Specimen Copy

संगीत-शास्त्र-दर्पण

लेखिका

शान्ति श्रीखण्डे एम० ए० एल० टी०

गीतालंकार', 'सगीत प्रभाकर', 'संगीत विशारद'

तथा 'संगीत रत्न'

प्रकाशक

रजिस्ट्रार

प्रयाग संगीत समिति

इलाहाबाद

SITY LIBR

AY 54

Specimen Copy 1954.

संगीत-शास्त्र-दर्पण

[हाई स्कूल, इन्टरमीडियेट, बी० ए० तथा 'संगीत प्रभाकर', 'संगीत विशारद' आदि संगीत की अन्य समानान्तर परीक्षाओं के लिए]

लेखिका

शान्ति श्रीखण्डे एम० ए० एल० टी०

'संगीतालंकार', 'संगीत प्रभाकर', 'संगीत विशारद'

तथा 'संगीत रत्न'

प्रिन्सपल

म्यूनिसपल गर्ल्स हायर सेकन्डरी स्कूल

ग़ाज़ियाबाद (यू० पी०)

प्रकाशक

रजिस्ट्रार

प्रयाग संगीत समिति

इलाहाबाद

१९५३ मूल्य ३)

145072

प्रकाशक तथा पुस्तक मिलने का पता:—
जगदीश नारायण पाठक
रजिस्ट्रार
प्रयाग संगीत समिति
१०८ हेस्टिंग्स रोड, इलाहाबाद

सर्वाधिकार लेखक के स्वाधीन

मुद्रक—चा
प्र

Specimen (2)

दो शब्द

कई शताब्दि पूर्व संस्कृत में लिखे गये संगीत शास्त्र पर अनेक ग्रन्थ आज हमें उपलब्ध है परन्तु संस्कृत भाषा का प्रचार कम होने के कारण आज उनसे अधिक लाभ नहीं उठाया जा सकता। आधुनिक समय में संगीत का विकास देखते हुए, इस विषय पर पूर्ण सामग्री बहुत कम है तथा इस क्षेत्र में अनेक नयी पुस्तकों की आवश्यकता प्रतीत होती जा रही है। इस अभाव को पूर्ति की ओर श्रीमती शान्ता श्रीखण्डे एम० ए० ने 'संगीत-शास्त्र-दर्पण' पुस्तक को लिख कर जो कार्य किया है वह वास्तव में सराहनीय है। संगीत-शास्त्र पर प्रस्तुत पुस्तक को लिखकर इन्होंने संगीत के विद्यार्थियों का बड़ा उपकार किया है। मेरे विचार में इस पुस्तक को पढ़ कर संगीत का प्रत्येक विद्यार्थी संगीत शास्त्र का यथेष्ट ज्ञान बहुत कम समय में ही प्राप्त कर सकता है। लेखिका ने संगीत शास्त्र के प्रत्येक विषय को अति सरल तथा स्पष्ट ढंग से समझाया है। पुस्तक का अंतिम अध्याय पाश्चात्य संगीत पर भी प्रकाश डालता है।

मुझे विश्वास है कि संगीत के विद्यार्थियों को अनेक दृष्टियों से यह पुस्तक लाभदायक सिद्ध होगी। अन्त में मैं लेखिका को उनके महत्वपूर्ण कार्य के लिए बधाई देता हूँ और आशा करता हूँ कि भविष्य में वे संगीत के अन्य विषयों पर पुस्तकें लिख कर विद्यार्थियों का लाभ करेंगी।

उदय शंकर कोचक
एम० एस० सा० संगीत-विशारद
अध्यक्ष, संगीत विभाग
प्रयाग विश्वविद्यालय
प्रयाग

अगस्त १९५३
गांधी जयन्ती से
प्रयाग

प्राक्कथन

'संगीत शास्त्र-दर्पण' पुस्तक आपके समक्ष
मुझे अत्यन्त हर्ष हो रहा है। आधुनिक सम
का क्षेत्र अधिकाधिक विकसित हो रहा है तथा
अन्य विषयों की तरह इसे भी उचित स्था
माध्यमिक शिक्षा के अतिरिक्त प्रमुख विश्वविद्
एक विषय के रूप में अपने पाठ्य-क्रमों में रख
विकसित रूप देखते हुए इस विषय पर प्राप्त पु
ही मालूम पड़ता है। जो पुस्तकें आज उपल
निश्चित पाठ्य-क्रमों का ध्यान बहुत कम रख
न्यूनता को ध्यान में रख कर ही प्रस्तुत पुस्तक
इस पुस्तक में संगीत शास्त्र का प्रत्येक
विस्तार पूर्वक समझाया गया है। हाई स्कूल, इ
बी० ए० तक के पाठ्य-क्रमों के विषयों का पूर्ण
यथासंभव किया गया है। इसके अतिरिक्त
संगीत समिति की 'संगीत प्रभाकर', मॉरिस
विशारद', गंधर्व महाविद्यालय की 'संगीत
की संगीत रत्न' आदि संगीत की मान्य परीक्ष
नुसार ही लिखी गई है। भाषा की सरलत
स्पष्टता का पूरा पूरा ध्यान रक्खा गया है। स
विषय जैसे—सहायक नाद, व्यंकटमखी के
राग, वीणा के तार पर स्वरों की स्थापना
आधुनिक ग्रन्थकारों का तुलनात्मक अध्ययन,

हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति के स्वरों, तालों व रागों में अन्तर, राग वर्गीकरण की पद्धतियाँ, गीत रचना के नियम, आदि अत्यन्त सरल ढङ्ग से समझाये गये हैं। वाद्यों में तानपूरा सितार और तबले के अङ्ग वर्णन तथा उनके पारिभाषिक शब्दों का विस्तृत वर्णन उनके चित्रों सहित दिया गया है। प्रचलित सभी गायन शैलियों का वर्णन प्रचलित सभी तालों का वर्णन तथा प्रचलित ५० रागों का पूर्ण विवरण इस पुस्तक में किया गया है।

भारतीय संगीत के इतिहास को तीन चरणों में विभाजित करके इस पुस्तक में उद्धृत किया गया है। संगीत की उत्पत्ति पर भी कुछ प्रकाश डाला गया है। इतिहास के अन्तरगत संगीत के पाँच आचार्यों की जीवनियाँ भी इस पुस्तक में दी गयी हैं।

इस पुस्तक की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि पाश्चात्य संगीत-शास्त्र का विषय कदाचित पहली बार ही इस पुस्तक में प्रतिपादित किया गया है। आधुनिक समय में हाई स्कूल की परीक्षा के बाद लगभग सभी संगीत की परीक्षाओं में पाश्चात्य संगीत के प्रारम्भिक ज्ञान की आवश्यकता होती है। पाश्चात्य संगीत के अन्तरगत इस पुस्तक में सरल गुणान्तर, मधुर स्वर-संवाद (Harmony) पाश्चात्य डायटॉनिक स्केल व समविभागीय सप्तक, स्वर समुदाय, स्टाफ नोटेशन आदि विषयों को समझाया गया है। प्रत्येक विषय को वैज्ञानिक रीति से उदाहरणों तथा चित्रों द्वारा स्पष्ट किया गया है।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि मेरा यह प्रयास संगीत के क्षेत्र में उपयोगी सिद्ध होगा। इस पुस्तक के प्रकाशन में शीघ्रता करने के कारण विषय प्रतिपादन में यदि त्रुटियाँ रह गई हों तो आशा है कि पाठक उन्हें क्षमा करेंगे। श्री जगदीश नारायण जी पाठक को मैं हृदय से आभारी हूँ जिन्होंने मुझे उत्साह दिलाया तथा इस

पुस्तक के प्रकाशन का सारा भार अपने ऊपर लिया। साथ
जिन महानुभावों का मुझे सहयोग प्राप्त हुआ है उन्हें मैं ह
से धन्यवाद देती हूँ।

गाजियाबाद
२ मार्च, १९५३

लेखिका

विषय-सूची

पृष्ठ

प्रथम अध्याय [विषय प्रवेश]

१—संगीत ... १
२—मार्गी व देशी संगीत ... २
३—दक्षिणी व उत्तरी पद्धति ... ३
४—लोक संगीत ... ३
५—शास्त्रीय संगीत ... ४
६—भातखण्डे पद्धति ... ५
७—विष्णु दिगम्बर पद्धति ... ६

द्वितीय अध्याय [ध्वनि]

१—नाद ... ८
२—अनाहत नाद ... ८
३—आहत नाद ... ९
४—नाद का छोटा बड़ा होना ... ९
५—नाद की जाति ... १०
६—नाद का ऊंचा नीचा होना ... १०
७—श्रुति ... ११
८—स्वर ... ११
९—श्रुति-स्वर-विभाजन ... १३
१०—सप्तक ... १८
११—थाट ... १९
१२—थाट के नियम ... २०
१३—हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति के दस थाट ... २१

१४—वर्ण ...
१५—राग ...
१६—राग की जाति ...
१७—थाट तथा राग में अन्तर ...

तृतीय-अध्याय [पारिभाषिक शब्द]

१—अलंकार ...
२—आलाप ...
३—तान ...
४—तानों के प्रकार ...
५—बोलतान ...
६—पकड़ ...
७—वक्र स्वर ...
८—आरोह-अवरोह ...
९—वर्ज्य स्वर ...
१०—वादी स्वर ...
११—संवादी स्वर ...
१२—अनुवादी स्वर ...
१३—विवादी स्वर ...
१४—विवादी स्वर का प्रयोग ...
१५—गमक ...
१६—मींड ...
१७—खटका व मुर्की ...
१८—कंपन ...
१९—अल्पत्व ...
२०—बहुत्व ...
२१—तिरोभाव ...

www.dharmalibrary.org.in

	पृष्ठ
२२—आविर्भाव ...	४२
२३—मुखचालन ...	४३
२४—रागालाप ...	४३
२५—रूपकालाप ...	४३
२६—आलप्तिगान ...	४४
२७—निबद्धगान ...	४४
२८—अनिबद्धगान ...	४४
३६—नायकी ...	४४
३०—गायकी ...	४५
३१—ग्रह अंश और न्यास स्वर ...	४५
३२—स्पर्श स्वर (कण स्वर)	४६
३३—अपन्यास स्वर ...	४६
३४—सन्यास स्वर ...	४६
३५—विन्यास स्वर ...	४७
३६—विदारी ...	४७
३७—स्थाय ...	४७
३८—उठाव ...	४७
३६—चलन ...	४८
४०—स्वस्थान ...	४८
४१—आक्षिप्तिका ...	४६
४२—वाग्गेयकार ...	४६
४३—ग्राम ...	४६
४४—मूर्छना ...	५१
४५—धातु ...	५३
४६—बाणी ...	५३
४७—आधुनिक संगीत में गीत रचना के मुख्य नियम	५४

www.gurukulmusic.com

४८—राग-रागनी पद्धति ...
४९—रागांग-पद्धति ...
५०—थाट राग-पद्धति ...
५१—सहायक नाद ...
५२—आश्रय राग ...
५३—शुद्ध, छायालग तथा संकीर्ण राग ...
५४—परमेल प्रवेशक राग ...
५५—रागों का समय ...
५६—पूर्व राग तथा उत्तर-राग ...
५७—संधिप्रकाश तथा उसके बाद के राग ...
५८—अध्वदर्शक स्वर ...
५९—गायकों के गुण तथा अवगुण ...

चतुर्थ-अध्याय [निबद्ध गान]

१—गायन शैलियाँ ...
२—ध्रुपद ...
३—धमार ...
४—होली ...
५—बड़ा ख्याल ...
६—छोटा ख्याल ...
७—टप्पा ...
८—ठुमरी ...
९—तराना ...
१०—लक्षणगीत ...
११—तिरवट गीत ...
१२—सरगम ...
१३—चतुरंग ...

www.dhraulibrary.org

पृष्ठ

१४—राजल ... ८०
१५—रागमाला ... ८१
१६—भजन और गीत ... ८१

पंचम-अध्याय [अन्य विषय]

१—व्यंकटमखी के ७२ थाटों की उत्पत्ति ... ८३
२—हिन्दुस्तानी पद्धति से ३२ थाटों की उत्पत्ति ८७
३—एक थाट से ४८४ रागों की उत्पत्ति ... ८८
४—स्वरों की अन्दोलन संख्या ... ९१
५—वीणा के तार की लम्बाई पर मध्य-कालीन स्वरों की स्थापना ... ९४
६—मंजरीकार के आधुनिक स्वरों की वीणा के तार पर स्थापना ... ९६
७—वीणा के तार पर स्वरों की स्थापना में पं० श्रीनिवास तथा मंजरीकार की तुलना ... ९६
८—अन्दोलन संख्या से तार की लम्बाई और तार की लम्बाई से स्वरों की अन्दोलन संख्या को निकलना ... १०१
९—भारत की उत्तरी तथा दक्षिणी संगीत पद्धतियों की तुलना ... १०१

षष्ठम-अध्याय [भारतीय वाद्य]

१—भारतीय वाद्यों का वर्गीकरण ... ११०
२—तानपूरा (अंग वर्णन) तथा उसे मिलाना ११२
३—सितार (अंग वर्णन) तथा उसे मिलाना ११४
४—मिज्राब ... ११६
५—गत ... ११७

Downloaded from www.dorajibrary.org.in

पृष्ठ

६—मसीद खानी ... ११७
७—रजाखानी ... ११७
८—जोड़ ... ११७
९—तोड़ा ... ११८
१०—झाला ... ११८
११—जमजमा ... ११८
१२—तरबे ... ११८
१३—थाट ... ११८
१४—तबला (अंग वर्णन) ... ११९
१५—तबले का मिलना ... १२०
१६—तबले की उत्पत्ति ... १२१
१७—तबले के घराने ... १२२

सप्तम-अध्याय [ताल-विभाग]

१—ताल ... १२६
२—ताल के दस प्राण ... १२६
३—मात्रा ... १२०
४—आवर्तन ... १३०
५—ठेका ... १३१
६—सम ... १३१
७—खाली ... १३१
८—ताली ... १३२
९—विभिन्न लयकारियाँ ... १३२
१०—ठेके के किस्में ... १३५
११—दोहा ... १३५
१२—मुखड़ा व मोहरा ... १३६

www.dbraulibrary.org.in

पृष्ठ

१३—कायदा ... १३७
१४—पल्टा ... १३७
१५—उठान ... १३७
१६—पेशकार ... १३८
१७—परन ... १३८
१८—गत ... १३६
१६—रेला ... १४०
२०—लग्गी ... १४०
२१—तालों का वर्णन (२१ प्रचलित ताल) १४१
२२—तालों को दुगुन, तिगुन, चौगुन व आड लिखना ... १५०
२३—संगीत में ताल का महत्व ... १५२

अष्टम-अध्याय [संगीत का इतिहास]

१—भारतीय संगीत का संक्षिप्त इतिहास ... १५५
२—शारङ्गदेव की जीवनी ... १६६
३—अमीर खुसरो की जीवनी ... १७१
४—तानसेन की जीवनी ... १७२
५—पं० विष्णु दिगम्बर पालुष्कर की जीवनी १७६
६—पं० विष्णु नारायण भातखण्डे की जीवनी १७६

नवम-अध्याय [रागों का परिचय]

१—प्रचलित ५० रागों का पूर्ण परिचय १८२

दशम-अध्याय [पाश्चात्य संगीत]

१—सरल गुणान्तर ... २१०
२ स्वर-संवाद (Harmony) ... २११

www.dreamlibrary.com

पृष्ठ

३—स्वरान्तर २१३
४—सच्चा स्वर-सप्तक (Diatonic Scale) २१४
५—सम-विभागीय-सप्तक (Equally Tem-
pered Scale) ... २१५
६—पाश्चात्य स्वर-मेल तथा स्वर-समुदाय
(Scales and chords) ... २१६
७—पाश्चात्य स्वरलिपि पद्धति (Staff Notation) २१६

संगीत

प्रथम अध्याय

गायन, वादन तथा नृत्य इन तीनों कलाओं के संयोग को संगीत कहते हैं। वैसे तो यह तीनों कलायें अपना स्थान पृथक पृथक रखती हैं परन्तु भारतीय संगीत में यह स्वतन्त्र नहीं कही जा सकतीं। तीनों कलाओं में बहुत घनिष्ट सम्बन्ध है व तीनों में गायन अधिक महत्वपूर्ण है। क्योंकि नृत्य वाद्य के अधीन है और वादन गायन के आधीन है। ऐसा कहा गया है :—

गीतं वाद्यं तथा नृत्यं त्रयं संगीत मुच्यते।
नृत्यं वाद्यानुगं प्रोक्तं वाद्य गीत नुवर्त्तिच॥

स्वर, ताल, हाव-भाव, शुद्ध मुद्रा व शब्दोच्चारण सहित गाने बजाने को संगीत कहते हैं। संगीत एक उच्च ललित कला है। इस कला को हम स्वरों का एक ऐसा सम्मिश्रण कह सकते हैं जो हृदयगत भावनाओं को सुन्दर बना कर प्रकट करता है। विद्वान् 'रसकिन' कहता है "अन्तरात्मा का उत्थान तथा उसे कलात्मक

और आनन्द-मय स्वरूप प्रदान करना ही संगीत कला का मुख्य ध्येय होना चाहिये।" इस कला का रूप निहारते हुये श्री रवीन्द्र नाथ कहते हैं कि "संगीत ही सौन्दर्य का साकार एवं सजीव प्रदर्शन है।"

मार्गी व देशी संगीत

संगीत को दो भागों में विभाजित करते है :—

१—मार्गी संगीत।

२—देशी संगीत।

मार्गी संगीत—जो संगीत ब्रह्मा जी ने भरतमुनि को सिखाया और भरत ने जिसे गधर्व व अप्सराओं से शंकर भगवान को सुनवाया उसे मार्गी संगीत कहते हैं। यह लोक रंजन के लिए नहीं है। इसी संगीत में अनाहत नाद का प्रयोग होता है इसके द्वारा ईश्वर प्राप्ति होती है। आजकल इस संगीत का प्रचार बिल्कुल नहीं है।

देशी-संगीत—जो संगीत आज हमें सुनने को मिलता है और जिसका उद्देश्य जन मन-रंजन है, देशी संगीत कहलाता है। यह संगीत परिवर्तनशील है। भिन्न-भिन्न देशों में भिन्न-भिन्न प्रकार का संगीत पाया जाता है। वास्तव में यह संगीत लोगों की रुचि पर ही निर्भर रहता है। लोगों की रुचि के अनुसार ही इसमें परिवर्तन होता है।

अपने देश में देशी संगीत को दो भागों में विभाजत किया गया है। इसलिए यहाँ दो पद्धतियाँ प्रचलित हैं।

१—दक्षिणी पद्धति।

२—उत्तरी पद्धति।

दक्षिणी अथवा कर्नाटकी संगीत पद्धति—जो संगीत मद्रास, मैसूर व कर्नाटक में प्रचलित है दक्षिणी या कर्नाटकी संगीत कहलाता है।

उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति—कर्नाटक संगीत के अलावा जो संगीत सारे उत्तरी भारत में प्रचलित है हिन्दुस्तानी संगीत कहलाता है।

इन दोनों पद्धतियों में समानतायें व भिन्नतायें दोनों पाई जाती हैं। समानता जैसे—दोनों में एक सप्तक में शुद्ध तथा विकृत बारह स्वर माने जाते हैं। दोनों में सप्तक के स्वरों से थाट की उत्पत्ति होती है, दोनों पद्धतियाँ थाट-राग पद्धति को मानती हैं आदि। दोनों पद्धतियों में भिन्नतायें भी हैं जैसे—दोनों के थाट अलग-अलग हैं तथा थाटों की संख्या अलग-अलग है, रागों में भिन्नता है, दोनों की ताल-पद्धति भिन्न है आदि। इन दोनों पद्धतियों में अन्तर आगे दिया जावेगा।

प्रचलित देशी संगीत को हम दो भागों में विभाजित कर सकते हैं:—

(१) लोक-संगीत (Light Music)

(२) शास्त्रीय संगीत (Classical Music)

लोक-संगीत—इस संगीत के अंदर हल्के-फुल्के गाने आते हैं। यह संगीत जन साधारण को अधिक पसन्द होता है कारण यह है इसे समझने के लिये विशेष ज्ञान की आवश्यकता नहीं होती। उदाहरण के लिये—ढोलक के गीत, प्रान्तों में प्रचलित गीत, गाँवों में विशेष उत्सवों पर गाये जाने वाले गीत, लोरी, आल्हा, भजन व फिल्मी संगीत इसी के अन्तर्गत आते हैं। आधुनिक समय में लोक-संगीत में फिल्मी गानों, भजन व गीतों का अधिक प्रचार हो रहा है। इस संगीत में शब्द, लय व स्वर तीनों का स्थान बराबर

होता है। गाँव में प्रचलित गीत, ढोलक के गीत, आल्हा आदि केवल लय प्रधान होते हैं तथा केवल कुछ ही स्वरों में इनका काम चल जाता है। परन्तु फ़िल्मी संगीत, भजन, गीत आदि स्वर व लय प्रधान होने के साथ शब्द प्रधान भी होते हैं।

शास्त्रीय संगीत—जो संगीत स्वर, राग, ताल, लय आदि नियमों से बाँध कर तथ आकर्षक रीति से गाया या बजाया जाता है वह शास्त्रीय संगीत कहलाता है। लोक संगीत का कोई निश्चित शास्त्र नहीं होता परन्तु इस संगीत का नियमित शास्त्र होता है तथा उसी शास्त्र के अनुसार गायन या वादन होना आवश्यक है। क्योंकि इस संगीत का एक नियमित शास्त्र होता है इसलिये इसे शास्त्रीय संगीत कहते हैं।

शास्त्रीय संगीत के दो भाग किये जा सकते हैं :—

(१) लिखित (Theoretical)

(२) क्रियात्मक (Practical)

लिखित-शास्त्रीय संगीत—इसके अन्दर संगीत का सारा शास्त्र आ जाता है। लिखित शास्त्र में संगीत के पारिभाषिक शब्द जैसे—संगीत, नाद, श्रुति, स्वर, सप्तक, राग, ग्राम, मूर्छना, गमक, तान, आलाप आदि तथा गायन के प्रकार ख्याल, ध्रुपद, ठुमरी आदि सब आते हैं। वास्तव में भारतीय संगीत का शास्त्र बहुत विस्तृत है।

क्रियात्मक-शास्त्रीय-संगीत—भारतीय संगीत का जिस प्रकार लिखित अंग प्रबल है उसी प्रकार उसका क्रियात्मक अंग भी बहुत प्रबल है। क्रियात्मक अंग में हम गायन के प्रकार, नृत्य अथवा वादन के प्रकार, गायकी, घराने, ध्वनि का विशेष उतार-चढ़ाव, आलाप व तानों के प्रकार, बोलतान इत्यादि का समावेश करते हैं। भारतीय रागों का क्षेत्र बहुत

विस्तृत है तथा गायन शैलियों का भी बहुत बड़ा क्षेत्र है। इस प्रकार शास्त्रीय संगीत का क्रियात्मक अंग बहुत महत्व रखता है। वास्तव में संगीत एक ऐसी कला है जिसमें क्रियात्मक अंग (Practical) अधिक प्रबल है।

उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत की प्रचलित दो पद्धतियाँ— उत्तर भारत में स्वर लेखन या स्वरलिपि के लिये दो पद्धतियाँ प्रचलित हैं जो ये हैं :—

(१) भातखण्डे पद्धति।

(२) विष्णु दिगम्बर पद्धति।

भातखण्डे पद्धति के अनुसार स्वर-लेखन चिन्ह इस प्रकार से हैं :—

भातखण्डे पद्धति :—

(१) शुद्ध स्वर — ग रे प — कोई चिन्ह नही होगा।

(२) कोमल स्वर — ध॒ ग॒ रे॒ — नीचे पड़ी रेखा।

(३) तीव्र स्वर — म॑ — ऊपर खड़ी रेखा।

(४) तार सप्तक के स्वर — रें गं प॑ — ऊपर बिन्दी।

(५) मन्द्र सप्तक के स्वर — ग॒ प॒ ग॒ — नीचे बिन्दी।

(६) मध्य सप्तक के स्वर — गरे गरे — कोई चिन्ह नहीं।

(७) एक मात्रा का चिन्ह — ग रे सा — कोई चिन्ह नहीं।

(८) आधी मात्रा का चिन्ह — गरे सरे — नीचे चाँद बनाना।

(९) चौथाई या अधिक मात्रा का चिन्ह — सारेगप या धपनिसांरेंगं एक चांद की मात्रा में कितने भी स्वर आ सकते हैं।

(१०) (‿) यह कौमा लगने से एक मात्रा के बराबर दो भाग हो जाते हैं जैसे सा, गरे यानी सा = १ मात्रा व ग = रे = ½ मात्रा।

(११) स्वरों के आगे लेटी लकीर से स्वरों का उच्चारण बढ़ता है जैसे—सा – – – सा = ४ मात्रा।

(१२) गीत के अक्षरों का उच्चारण बढ़ाने के लिये अवग्रह (ऽ) का प्रयोग होता है जैसे श्या ऽ ऽ म

(१३) सम का चिन्ह — ×

(१४) खाली ,, ,, — ०

(१५) तालियों पर ताली की संख्याय लिखते हैं जैसे – २,३,४,

(१६) मींड – प ग

ध प

(१७) कण स्वर – प ग

(१८) कोष्टक में स्वर जैसे (सां) = रें सांनिसां

विष्णु दिगम्बर पद्धति के अनुसार स्वर लेखन चिन्ह इस प्रकार से है :—

विष्णु दिगम्बर पद्धति :—

(१) शुद्ध स्वर – ग रे – कोई चिन्ह नहीं।

(२) कोमल स्वर – ग् ध् – नीचे हलंत लगाते हैं

(३) तीव्र स्वर – म या म् – इस प्रकार हलंत लगाते हैं।

(४) तार स्वर – ग रे – ऊपर खड़ी लकीर।

(५) मंद्र स्वर – गं रं – ऊपर बिन्दी।

(६) मध्य स्वर – ग र – कोई चिन्ह नहीं।

(७) स्वरों को दीर्घ करना – प ऽ ऽ म – अवग्रह

(८) अक्षरों को दीर्घ करना – रा...म = बिन्दी

(९) विश्रांति चिन्ह – (,)

(१० एक मात्रा का चिन्ह – सा रे

(११) दो मात्रा का चिन्ह – सा रे

(१२) आधी मात्रा का चिन्ह – सा रे

(१३) चौथाई मात्रा ,, ,, – सा रे

(१४) $\frac{1}{2}$ मात्रा ,, ,, – सा रे

(१५) $\frac{1}{3}$ मात्रा ,, ,, – सा रे

(१६) $\frac{3}{4}$ मात्रा ,, ,, – स रे

(१७) प्रत्येक आवर्तन के बाद खड़ी लकीर – ।

(१८) स्थाई के अन्त में दो खड़ी लकीर – ॥

(१९) पूरे गीत के अन्त के बाद तीन खड़ी लकीरें – ।॥

(२०) सम – १

(२१) खाली – +

(२२) ताली के स्थान पर मात्राओं की संख्या लिखते हैं।

(२३) कण – ध

(२४) मींड – प ग।

Downloaded from www.Gyanilibrary.org.in

द्वितीय अध्याय

'संगीत ध्वनि संभूति' अर्थात् संगीत ध्वनि पर ही आधारित है। परन्तु ध्वनि के विषय में मतभेद हो सकता है कि वह ध्वनि किस प्रकार की होना चाहिये। ध्वनि की उत्पत्ति कंपन अथवा अन्दोलन (Vibration) से होती है। साधारणतः जब किसी वाद्य का तार छेड़ा जाता है तो उसमें अन्दोलन उत्पन्न होता है जिसके कारण ध्वनि संचारित होती है। इसी प्रकार जब मनुष्य के कंठ में वायु का प्रवेश होता है तो गले के अन्दर की स्वर-तंत्रियां कम्पित होती है और ध्वनि उत्पन्न होती है। इस ध्वनि पर ही सारे संगीत की नींव अवलंबित है।

नाद

ध्वनि दो प्रकार की हो सकती हैं। (१) वह ध्वनि जिसमें कंपन या अन्दोलन (Vibration) नियमित होते हैं तथा जो सुनने में प्रिय मालूम पड़ती हैं (२) दूसरी वह ध्वनि जिसके कंपन नियमित नहीं होते जैसे शोर गुल आदि। इनमें पहली ध्वनि जो संगीतोपयोगी होती है तथा जिसके कंपन नियमित होते हैं, नाद कहलाती है। अर्थात् संगीतोपयोगी आवाज ही नाद है।

नाद के दो भेद हैं (१) अनाहत नाद (२) आहत नाद।

अनाहत नाद—यह वह नाद है जो बिना किसी आघात के उत्पन्न होता है तथा साधारणतः सुनाई नहीं पड़ता। इसका प्रयोग मार्गी संगीत के लिये होता है। सिद्ध लोग इसकी साधना

करके मोक्ष की प्राप्ति करते हैं। यह नाद साधारण मनुष्य को सुनाई नहीं पड़ता।

आहत नाद—यह नाद किसी आघात द्वारा उत्पन्न होता है। देशी संगीत में इसी नाद का प्रयोग होता है। साधारणतः यह नाद तीन प्रकार से उत्पन्न हो सकता है :—(१) किसी एक वस्तु पर दूसरी वस्तु का आघात होने से जैसे तबले पर जब हाथ का आघात होता है तो आवाज उत्पन्न होती है। (२) किन्हीं दो वस्तुओं के आपस में रगड़ने से ध्वनि उत्पन्न होती है जैसे सारङ्गी अथवा बेले पर जब गज रगड़ा जाता है तब ध्वनि उत्पन्न होती है। (३) किसी वस्तु में जब हवा प्रवेश करती है तब ध्वनि उत्पन्न होती है जैसे बाँसुरी या बीन में जब हवा भरी जाती है तब ध्वनि उत्पन्न होती है। कण्ठ में भी जब वायु का प्रवेश होता है तब ध्वनि उत्पन्न होती है।

नाद के लिये तीन मुख्य बातों की आवश्यकता होती है:—

(१) नाद का छोटा-बड़ा होना—(Magnitude) एक ही नाद धीमा व तेज हो सकता है। नाद का यह गुण नाद के उत्पन्न करने पर निर्भर है क्योंकि यदि एक नाद धीमे से उत्पन्न किया जावेगा तो वह कम सुनाई पड़ता है तथा वही नाद यदि जोर से उत्पन्न किया जाता है तो दूर तक सुनाई पड़ता है जब नाद धीमे से उत्पन्न होता है तो उसे नाद का छोटा पन कहते हैं तथा जब नाद जोर से उत्पन्न किया जाता है तो उसे नाद का बड़ा पन कहते है। उदाहरण के लिये यदि 'सा' को हम धीरे से उत्पन्न करेंगे तो केवल पास के लोग ही उसे सुन सकते हैं परन्तु यदि उसे जोर से उत्पन्न किया जाय तो दूर के लोग भी उसे सुन सकते हैं। यही नाद का छोटा बड़ा पन है।

(२) नाद की जाति—(Timber) नाद का यह गुण बहुत ही महत्वपूर्ण है। नाद के इस गुण से हमको यह मालूम पड़ता है कि जो नाद उत्पन्न हो रहा है वह किस वस्तु अथवा वाद्य का है। कहने का अर्थ यह है कि नाद के उत्पन्न होने पर हम केवल सुनकर कह सकते हैं कि यह नाद किस वाद्य अथवा किसके कण्ठ से उत्पन्न हो रहा है। नाद के इस गुण को नाद की जाति कहते हैं। उत्पन्न नाद की जाति इस गुण के द्वारा मालूम होती है। उदाहरण के लिये कई वाद्यों के एक साथ बजने पर हम बिना देखे यह कह सकते हैं कि अमुक ध्वनि सारङ्गी की तथा अमुक ध्वनि बेले की है। यहाँ तक देखा जाता है कि किसी मनुष्य के गाने से हम बिना उसके देखे, केवल कानों से सुनकर उस व्यक्ति का नाम बतला सकते हैं। नाद का यह गुण नाद की जाति कहलाता है।

(३) नाद का ऊँचा-नीचा होना—(Pitch) प्रत्येक नाद दूसरे नाद से ऊँचा अथवा नीचा होता है जैसे सा से ऊँचा रे है तथा रे से नीचा सा है। जब एक नाद दूसरे नाद से ऊँचा होता है तब उसे नाद का ऊँचापन तथा जब एक नाद दूसरे नाद से नीचा होता है तो उसे नाद का नीचापन कहते हैं। नाद का ऊँचा-नीचापन नाद में उत्पन्न होने वाली एक सेकिन्ड की अन्दोलन संख्याओं पर निर्भर होता है। एक सेकिन्ड में नाद की अन्दोलन संख्या जितनी अधिक होगी नाद उतना ही ऊँचा होगा तथा एक सेकिन्ड में नाद की अन्दोलन संख्या जितनी कम होगी नाद उतना ही नीचा होगा। उदाहरण के लिये मध्यम स्वर की अन्दोलन सख्या गन्धार स्वर से अधिक है इसलिये मध्यम स्वर गन्धार से ऊँचा है तथा पंचम स्वर की अन्दोलन संख्या धैवत की अन्दोलन संख्या से कम है इसलिये पंचम स्वर धैवत

स्वर से नीचा है। इसी तरह नाद ऊंचे नीचे हुआ करते हैं। नाद के इस गुण को नाद का ऊंचा-नीचापन कहते हैं।

श्रुति

शास्त्रकार श्रुति की परिभाषा इस प्रकार करते हैं "श्रूयते इति श्रुति" अर्थात् जो आवाज कानों को सुन पड़े श्रुति है। ध्यान से देखने पर यह परिभाषा उचित नहीं दीख पड़ती है। कारण संगीतोपयोगी आवाज को छोड़कर और भी आवाजें कानों को सुनाई पड़ती हैं पर वे श्रुति नहीं है। श्रुति की परिभाषा हम इस प्रकार कर सकते हैं :—वह संगीतोपयोगी आवाज अथवा नाद जो कानों को साफ साफ सुनाई पड़े तथा जो एक दूसरे से स्पष्ट तथा अलग पहिचानने में आ सके, उसे श्रुति कहते हैं। अलग तथा स्पष्ट होने के कारण श्रुति की संख्या एक सप्तक में निश्चित हो जाती है। शास्त्रकारों ने एक सप्तक में श्रुतियों की संख्या २२ मानी है।

स्वर

एक सप्तक की २२ श्रुतियों में से चुनी गई ७ श्रुतियां जो एक दूसरे से काफी अन्तर पर है तथा जो सुनने में मधुर है, स्वर कहलाती है। श्रुति और स्वर में कोई अन्तर नहीं है केवल अन्तर यही हैं कि २२ श्रुतियो में से ७ श्रुतियों को छाँटकर स्वरों के नाम से पुकारा जाता है। ७ स्वरों के नाम इस प्रकार है :— षड़ज, रिषभ, गंधार, मध्यम, पंचम, धैवत, और निषाद। इन्हीं को गाने में इनके प्रथम अक्षर से सम्बोधित करते हैं अर्थात् सा, रे, ग, म, प, ध, और नि कह कर पुकारते हैं।

स्वरों के दो रूप होते हैं (१) शुद्ध रूप (२) विकृत अथवा चल रूप।

शुद्ध स्वर—जब ऊपर लिखे सात स्वर अपने निश्चित स्थान पर रहते हैं तो शुद्ध स्वर कहलाते हैं। अर्थात् सातों स्वर जब निश्चित श्रुतियों पर कायम रहते हैं तब वे शुद्ध होते हैं परन्तु इन सात स्वरों में रे ग म ध नि स्वर शुद्ध रूपों के अलावा अपने विकृत रूप में भी आते हैं इसलिये इनके दोनों रूप हैं केवल सात स्वरों में सा व प स्वर अपने रूप नहीं बदलते हैं और इसलिये अचल स्वर कहलाते हैं। शुद्ध स्वर को लिखने के लिये कोई चिन्ह नहीं लगाते जैसे—सा रे ग म प ध नि सां।

विकृत या चल स्वर—जब शुद्ध स्वर अपने निजी स्थान से ऊपर या नीचे हटते हैं तब विकृत या चल कहलाते हैं। केवल सा व प स्वरों को छोड़ कर रे ग म ध नि स्वर अपने स्थानों से हटते हैं और विकृत स्वर कहलाते हैं। विकृत स्वर को लिखने के लिये उनके ऊपर या नीचे चिन्ह लगाते हैं।

विकृत के भी दो रूप होते हैं (१) कोमल विकृत (२) तीव्र विकृत। जब स्वर अपने निजी स्थान से नीचे को हटता है तो वह कोमल विकृत कहलाता है जैसे रे ग ध नि स्वर जब अपने शुद्ध स्थान से नीचे हटते हैं तो कोमल होते हैं। जब स्वर अपने निजी स्थान से ऊपर की ओर हटता है तो तीव्र विकृत होता है जैसे जब 'म' स्वर अपने शुद्ध स्थान से ऊंचा होता है तब तीव्र कहलाता है।

अब हम कह सकते हैं कि ७ स्वरों में से २ स्वर यानी सा व प स्वर ऐसे हैं जो अपने स्थान से नहीं हटते व ५ स्वर यानी रे ग म ध नि ऐसे हैं जो अपने स्थान से हटते हैं। कहने का

तात्पर्य यह है कि ७ स्वरों में से २ स्वरों के तो रूप एक ही हैं परन्तु ५ स्वरों के दो दो रूप हैं। इस प्रकार कुल स्वर मिल कर १२ होते हैं। सरलता के लिये हम इस प्रकार स्वरों का विभाजन कर सकते हैं :—

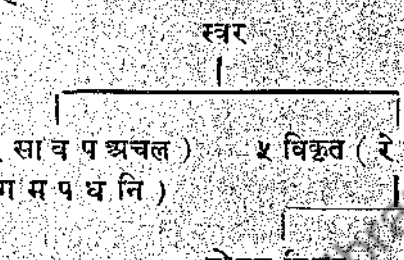

श्रुति-स्वर-विभाजन

सप्तक की बाइस श्रुतियों को सप्तक के सात स्वरों में बाँट दिया गया है। संगीत के प्राचीन, मध्यकालीन व आधुनिक ग्रन्थकारों ने यह विभाजन इस सिद्धान्त के अनुसार किया है।

चतश्चतुश्चतुश्च चैव षड्ज मध्यम पंचमाः।
द्वे द्वे निषाद गांधारौ त्रिस्त्री ऋषभ धैवतौ॥

अर्थात षड्ज, मध्यम व पंचम स्वरों में चार-चार श्रुतियाँ, निषाद व गन्धार स्वरों में दो-दो श्रुतियाँ तथा रिषभ व धैवत स्वरों में तीन-तीन श्रुतियाँ हैं।

यह सिद्धान्त तो तीनों कालों के ग्रन्थकार मानते हैं परन्तु तीनों कालों के ग्रन्थकारों में कुछ मतभेद हैं जो इस प्रकार है :—

प्राचीन काल:—प्राचीन ग्रन्थों में प्रमुख ग्रन्थ भरत का "नाट्यशास्त्र" तथा शारंगदेव का "संगीत रत्नाकर" हैं। प्राचीन

काल के ग्रन्थकार भरत व शारंगदेव अपने शुद्ध स्वरों की स्थापना उनकी अंतिम श्रुति पर करते थे। इसका अर्थ यह हुआ कि प्राचीन ग्रन्थकार अपने सात स्वर इस प्रकार २२ श्रुतियों पर स्थापित करते थे – सा – चौथी श्रुति पर, रे – सातवीं श्रुति पर, ग – नवीं श्रुति पर, म – तेरहवीं श्रुति पर, प – सत्रहवीं श्रुति पर, ध – बीसवीं श्रुति पर, नि – बाइसवीं श्रुति पर।

दूसरी विशेषता जो प्राचीन ग्रन्थकारों में थी वह यह कि भरत व शारंगदेव सब श्रुतियों को समान मानते थे। उनकी प्रत्येक श्रुति का अन्तर बराबर होता था अर्थात जितना अन्तर पहली श्रुति व दूसरी श्रुति में था उतना ही दूसरी और तीसरी श्रुतियों में था तथा इसी प्रकार सारी श्रुतियां समानान्तर पर थीं। समानान्तर पर होने से उनकी आपस की दो श्रुतियों का अन्तर एक "प्रमाण" बन गया था और वे किसी भी स्वर को श्रुतियों द्वारा नाप लिया करते थे।

मध्य-काल:—मध्य काल के ग्रन्थों में प्रमुख चार ग्रन्थ यह हैं—कवि लोचन की लिखी "राग तरंगिणी", अहोबल का "संगीत पारिजात", हृदयनरायण देव के "हृदय कौतुक" और "हृदय प्रकाश" तथा पं श्री निवास का "राग तत्वविबोध"।

प्राचीन काल की तरह मध्यकालीन ग्रन्थकारों ने भी अपने स्वरों की स्थापना उनकी अंतिम श्रुति पर की अर्थात् – सा – चौथी श्रुति पर, रे – सातवीं श्रुति पर, ग – नवीं श्रुति पर, म – तेरहवीं श्रुति पर, प – सत्रहवीं श्रुति पर, ध – बीसवीं श्रुति पर, नि – बाइसवीं श्रुति पर। परन्तु मध्यकालीन ग्रन्थकार अपनी श्रुतियों को प्राचीन ग्रन्थकारों की तरह समान नहीं मानते थे। मध्यकाल के सारे ग्रन्थकार अपनी बाइस

श्रुतियों को असमान मानते थे इसी कारण उन्होंने अपने स्वरों की स्थापना श्रुतियों के माध्यम से न करके वीणा के तार पर विभिन्न लम्बाइयों से की। वीणा के तार पर मध्यकालीन स्वरों की स्थापना आगे दी जावेगी।

आधुनिक-काल:—आधुनिक ग्रन्थों में पं भातखण्डे जी के ग्रन्थ "अभिनव राग मजरी", तथा "लक्ष्य संगीत" हैं। पं भातखण्डे जी सप्तक के स्वरों की स्थापना २२ श्रुतियों पर प्राचीन व मध्यकालीन ग्रन्थकारों की तरह उनकी अंतिम श्रुति पर न करके उनकी प्रथम श्रुतियों पर करते हैं। कहने का अर्थ यह हुआ कि आधुनिक ग्रन्थकार अपने स्वरों की स्थापना २२ श्रुतियों पर इस प्रकार से करते हैं :—सा—पहली श्रुति पर, रे—पाँचवीं श्रुति पर, ग—आठवीं श्रुति पर, म—दसवीं श्रुति पर, प—तेरहवीं श्रुति पर, ध—अठारहवीं श्रुति पर नि—इक्कीसवीं श्रुति पर।

आधुनिक ग्रन्थकार अपनी श्रुतियाँ मध्यकालीन ग्रन्थकारों की तरह असमान मानते हैं भातखण्डे जी ने स्वरों की स्थापना वीणा के तार पर श्रुतियों के आधार पर न करके मध्य कालीन ग्रन्थकारों की तरह विभिन्न लम्बाइयों पर की है। परन्तु आधुनिक ग्रन्थकारों की वीणा पर स्वरों की स्थापना मध्यकालीन ग्रन्थकारों की स्थापना से कुछ भिन्न है जिसका वर्णन आगे किया जावेगा।

नीचे श्रुति-स्वर-विभाजन को चित्र द्वारा स्पष्ट किया जाता है :—

श्रुति संख्या	श्रुति नाम	श्रुति-स्वर विभाजन	प्राचीन व मध्यक लीन स्वरों की स्थापना	आधुनिक स्वरों की स्थापना
१	तीव्रा	'सा' स्वर की चार श्रुतियाँ	.....	षड्ज (सा)
२	कुमुद्वती			
३	मंदा			
४	छंदोवती	.....	षड्ज (सा)	
५	दयावती	'रे' स्वर की तीन श्रुतियाँ	.....	ऋषभ (रे)
६	रंजनी			
७	रक्तिका	.....	ऋषभ (रे)	
८	रौद्री	'ग' स्वर की दो श्रुतियाँ	.....	गान्धार (ग)
९	क्रोधी		गान्धार (ग)	
१०	वज्रिका	'म' स्वर की चार श्रुतियाँ	.....	मध्यम (म)
११	प्रसारिणी			
१२	प्रीति			
१३	मार्जनी	.....	मध्यम (म)	

www.vidyarthiyonline.com

१४	क्षिति	'प' स्वर की चार	.....	पंचम (प)
१५	रक्ता	श्रुतियाँ		
१६	संदीपिन			
१७	आलापिन	.....	पंचम (प)	
१८	मदंती	'ध' स्वर की तीन	.....	धैवत (ध)
१९	रोहिणी	श्रुतियाँ		
२०	रम्या	.....	धैवत (ध)	
२१	उग्रा	'नि' स्वर की दो	.....	निषाद (नि)
२२	क्षोभिणी	श्रुतियाँ	निषाद (नि)	

Downloaded from www.dhrupad.org

सप्तक

सात स्वरों के समूह को जब एक क्रम से कहा जाता है अथवा लिखा जाता है तो सप्तक की उत्पत्ति होती है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि सात स्वरों के क्रमानुसार समूह को सप्तक कहते हैं, जैसे—सा रे ग म प ध नि, यह एक सप्तक हुआ। यहाँ पर पहला सप्तक नि स्वर पर समाप्त हुआ। इस 'नि' के बाद फिर 'सा' आता है जो पहले सा से दुगना ऊँचा होता है और दूसरे सप्तक का 'सा' कहलाता है इस सा के बाद क्रमानुसार सातों स्वर फिर आ सकते हैं जैसे तार सा, रे, ग, म, प, ध, नि यह सब स्वर पहले स्वरों से दुगने ऊँचे हैं।

इस प्रकार न जाने कितने सप्तक हो सकते हैं। परन्तु साधारणतः मनुष्य की आवाज तीन सप्तक से अधिक नहीं जा सकती। इस लिए शास्त्रकारों ने भारतीय संगीत में केवल तीन सप्तक माने हैं। इन्हीं तीन सप्तकों में अधिकतर स्त्री, पुरुष व बच्चे आदि गाते बजाते हैं। कुछ वाद्यों का क्षेत्र इन तीन सप्तकों से अधिक है और उनके स्वर इन तीन सप्तकों के अलावा कुछ ऊपर व कुछ नीचे तक जा सकते हैं। परन्तु मुख्य तीन सप्तक इस प्रकार हैं:—

(१) मन्द्र सप्तक
(२) मध्य सप्तक
(३) तार सप्तक

इन सप्तकों को 'स्थान' कह कर भी पुकारते हैं।

मन्द्र सप्तक

साधारण आवाज से दुगनी नीची आवाज को मन्द्र सप्तक की आवाज कहते हैं। साधारण आवाज वह है जिसे बोलने अथवा जिन स्वरों को गाने में हमारे गले को कोई कष्ट नहीं होता तथा

ाने पर जोर भी नहीं पड़ता है। अब इस साधारण आवाज से दुगनी नीची आवाज जिसके स्वर कहने से हृदय पर जोर पड़ता है, मन्द्र सप्तक की आवाज कहलाती है। मन्द्र सप्तक के स्वरों को लिखने के लिये भातखण्डे जी की पद्धति में स्वरों के नीचे बिन्दी लगाते हैं जैसे—म् प् ध् नि्।

मध्य सप्तक:—मध्य के अर्थ हैं बीच की। वह आवाज जो न अधिक नीची होती है और न अधिक ऊँची होती है, अर्थात् बीच की आवाज मध्य सप्तक की आवाज कहलाती है। इस सप्तक के स्वरों, मन्द्र के स्वरों से दुगने ऊँचे होते हैं। साधारणतः जिस आवाज में बोलने से हमें किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता वह मध्य-सप्तक की आवाज होती है। मध्य सप्तक के स्वरों को कहने से कण्ठ पर प्रभाव पड़ता है इस सप्तक के स्वर लिखने के लिये इन पर कोई चिन्ह नहीं लगाते जैसे—ध नि ध।

तार-सप्तक:—मध्य सप्तक से दुगनी ऊंची आवाज को तार-सप्तक की आवाज कहते हैं। इस सप्तक के स्वरों का उच्चारण करते हुये चिल्लाना पड़ता है। इस सप्तक के स्वरों को कहने पर हमारे तालु अथवा मस्तक पर जोर पड़ता है।

थाट

संगीत में हमने देखा कि नाद से श्रुति, श्रुति से स्वर, स्वर से सप्तक की उत्पत्ति होती है। सप्तक में शुद्ध तथा विकृत कुल मिलाकर १२ स्वर होते हैं। इन्हीं १२ स्वरों से थाट की उत्पत्ति होती है। सप्तक के इन १२ स्वरों से थाटों की किस प्रकार उत्पत्ति होती है तथा इन १२ स्वरों से कुल कितने थाटों

की उत्पत्ति हो सकती है आदि विषय बाद में समझाये जावेंगे यहाँ पर थाट की परिभाषा व उसके नियम दिये जाते हैं :—

सप्तक के ७ स्वरों के क्रमानुसार समूह को थाट कहते हैं थाट में प्रत्येक स्वर का कोई रूप अवश्य आना चाहिये। साथ ही थाट में राग उत्पन्न करने की शक्ति होना चाहिये। कहने का तात्पर्य यह है कि सप्तक के ७ स्वरों के क्रमानुसार समूह को जिससे राग उत्पन्न हो सके थाट कहते हैं। थाट का दूसरा नाम मेल है। शास्त्रकारों ने थाट अथवा मेल को इस प्रकार बतलाया है—

मेल : स्वर समूह : स्याद्रागाव्यंजन शक्तिमान्।

अर्थात् स्वरों की उस रचना को मेल अथवा थाट कहते हैं जिससे राग उत्पन्न हो सके।

थाट के नियम:—थाट के निम्नलिखित नियम या लक्षण हैं :—

(१) थाट हमेशा सम्पूर्ण होता है अर्थात् थाट में सात स्वर होते हैं। कारण यह है कि थाट से राग उत्पन्न होते हैं और बहुत से ऐसे भी राग हैं जिसमें सात स्वर होते हैं। इसलिये यदि थाट में सात स्वर न होंगे तो वह सात स्वर वाला राग कैसे उत्पन्न कर सकेगा।

(२) थाट में सप्तक के सात स्वर क्रमानुसार होना चाहिये अर्थात् सातों स्वर क्रम से हों जैसे—सा रे ग म प ध नि।

(३) थाट के लिये आरोह तथा अवरोह दोनों की आवश्यकता नहीं है केवल आरोह होना थाट के लिये आवश्यक है। आरोह से ही थाट पहिचाना जा सकता है जैसे—सा रे ग म प ध नि यह कल्याण थाट है।

(४) थाट में रञ्जकता की आवश्यकता नहीं है रञ्जकता की आवश्यकता राग के लिये है। थाट में क्योंकि एक स्वर के दो रूप आ सकते हैं इससे उसमें रञ्जकता रहना कठिन है।

(५) थाट में अनेक राग उत्पन्न करने की शक्ति होना आवश्यक है।

(६) थाट गाया नहीं जाता क्योंकि उसमें रञ्जकता नहीं होती।

हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति के दस थाट

हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में केवल १० थाट माने जाते हैं। जो इस प्रकार से हैं :—

यमन बिलावल और खमाजी, भैरव पूरवि मारवा काफी।
आसा भैरवि तोड़ि बखाने, दशमित थाट चतुर गुन माने॥

अर्थात् यमन, बिलावल, खमाज, भैरव, पूर्वी, मारवा, काफी, आसावरी, भैरवी और तोड़ी यह दस थाट माने गये हैं।

अब नीचे इन दस थाटों का स्वरूप दिया जाता है :—

(१) बिलावल (सब शुद्ध स्वर)—सा रे ग म प ध नि।

(२) कल्याण ('म' तीव्र बाकी शुद्ध)—सा रे ग म प ध नि।

(३) खमाज (नि कोमल बाकी शुद्ध) सा रे ग म प ध नि।

(४) भैरव (रे, ध कोमल बाकी शुद्ध) सा रे ग म प ध नि।

(५) काफी (ग, नि कोमल बाकी शुद्ध) सा रे ग म प ध नि।

(६) आसावरी (ग ध नि कोमल ,,) सा रे ग म प ध नि।

(७) मारवा (रे कोमल म तीव्र बाकी शुद्ध) सा रे ग म प ध नि।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(८) पूर्वी (रे ध कोमल, म तीव्र बाकी शुद्ध) सा रे ग म प
ध नि ।

(९) भैरवी (रे, ग, ध, नि कोमल) सा रे ग म
ध नि ।

(१०) तोड़ी (रे ग ध कोमल म तीव्र) सा रे ग म प
नि आधुनिक समय में इन १० थाटों के विषय में मतभेद
गया है। कुछ विद्वानों का कहना है कि बहुत से राग ऐसे हैं
इन १० थाटों के अन्तरगत नहीं आ सकते। इसलिये कुछ अन्
थाटों की उत्पत्ति करके इस संख्या को बढ़ाना चाहिये।

वर्ण

गाने अथवा बजाने में जो विभिन्न क्रियाऐं होती हैं, वर्ण
कहलाती हैं। शास्त्रकार वर्ण की परिभाषा इस प्रकार देते
"गानक्रियोच्यते वर्णः" अर्थात् गाने की क्रियाओं को वर्ण कहते
हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि गायन में स्वरों की जो विभिन्न
चालें होती हैं वर्ण कहलाती हैं। वर्ण चार प्रकार के होते हैं:—

(१) स्थाई वर्ण:—एक ही स्वर का बार बार उच्चारण करने
को स्थाई वर्ण कहते हैं। जैसे सा सा सा, ग ग ग ग आदि।

(२) आरोहि वर्ण:—नीचे से ऊपर के स्वर कहने
आरोहि वर्ण कहते हैं जैसे, सा रे ग म प ध नि। अर्थात् ज
एक स्वर के ऊपर के स्वरों का उच्चारण क्रमानुसार करते हैं त
आरोहि वर्ण कहलाता है।

(३) अवरोहि वर्ण:—ऊपर के स्वर से नीचे के स्वरों का उच्चारण करने को अवरोहि वर्ण कहते हैं जैसे, सां नि ध प म ग रे।

(४) संचारी वर्ण:—ऊपर लिखे गये स्थाई, आरोहि व अवरोहि वर्णों के मिश्रण को संचारी वर्ण कहते हैं। अर्थात् जब तीनों वर्णों का समावेश होता है तब संचारी वर्ण कहलाता है जैसे, रे ग म प प प ध प ग रे ग ग म ग रे।

राग

राग शब्द 'रंज' अर्थात् 'रंजना' अथवा 'आनन्द देना' इस धातु से उत्पन्न हुआ है। साधारणत: स्वरों तथा वर्णों की वह विशिष्ट या अनुपम रचना, जिसे सुन कर आनन्द की प्राप्ति हो, राग कहलाती है। विद्वानों ने भी राग की परिभाषा इस प्रकार दी है:—

योऽयं ध्वनि विशेस्तु स्वर वर्ण विभूषित:।
रंजको जन चित्तानां सराग: कथितो बुधै॥

अर्थात ध्वनि की वह विशेष रचना जिसे स्वर तथा वर्ण द्वारा सौन्दर्य प्राप्त हुआ हो और जो सुनने वालों के चित्त को मोह ले, राग कहलाती है। राग से विभिन्न रसों की अनुभूति होती है इसलिये कहा है 'रसात्मक रागा:'।

प्राचीनकाल में राग के १० लक्षण होते थे जो इस प्रकार हैं:—ग्रह, अंश, न्यास, अपन्यास, ओड़त्व, षाड़त्व, अल्पत्व, बहुत्व, मन्द्र व तार। इन लक्षणों में से आजकल कुछ प्रयोग में लाये जाते हैं तथा ग्रह, न्यास, अपन्यास, मन्द्र, तार आदि का प्रयोग बिलकुल नहीं किया जाता है। ग्रह स्वर उसे कहते थे

जिससे राग प्रारम्भ होता था, अंश राग का मुख्य स्वर होता था, तथा न्यास स्वर पर राग की समाप्ति होती थी। राग के आलाप आदि के उ -विभागों के अंतिम स्वर को अपन्यास कहते थे। औड़त्व व षाडत्व राग की जातियाँ थीं, यानी राग में कितने स्वर लगने चाहिये। राग में जिस स्वर का बार बार प्रयोग होता था उस स्वर का बहुत्व तथा जिस स्वर का कम प्रयोग होता था उस स्वर का अल्पत्व होता था। मन्द्र व तार राग के विस्तार के क्षेत्र थे।

आधुनिक समय में राग के निम्नलिखित नियम अथवा लक्षण हैं:—

(१) राग को किसी थाट अथवा मेल से उत्पन्न होना चाहिये।

(२) राग में कम से कम पांच स्वरों का होना आवश्यक है।

(३) राग में आरोहि व अवरोहि दोनों का होना आवश्यक है।

(४) राग में वादी संवादी स्वरों का होना आवश्यक है।

(५) राग में रंजकता का होना आवश्यक है।

(६) राग में एक स्वर के दो रूप नहीं आना चाहिये। क्योंकि एक ही स्वर के दो रूप आने से राग की रंजकता नष्ट होती है।

(७) राग में कभी षड़ज वर्जित नहीं होता।

(८) राग में कभी मध्यम व पचम दोनों स्वर एक साथ वर्जित नहीं हो सकते। इन दो स्वरों में से किसी राग में एक स्वर वर्जित हो सकता है।

(९) राग में किसी रस की अनुभूति होना चाहिए।

राग की जाति

राग के लक्षणों के अनुसार उसमें कम से कम पाँच और अधिक से अधिक सात स्वर हो सकते हैं इसलिये रागों में लगने वाले स्वरों की भिन्न-भिन्न संख्याओं के कारण उनके जो वर्ग किये गये है, उन्हें राग की जातियाँ कहते हैं। मुख्यतः राग की तीन जातियाँ हो सकती हैं।

(१) सम्पूर्ण—जिस राग में ७ स्वर लगें जैसे राग बिलावल।

(२) षाडव—जिस राग में ६ स्वर लगें जैसे राग मारवा या एक मत केअनुसार राग बंगाल भैरव जिसमें पंचम वर्जित है।

(३) औड़व—जिस राग में ५ स्वर लगे जैसे राग मालकोस जिसमें रे व प स्वर वर्जित हैं।

परन्तु देखने पर मालूम होता है कि यह वर्गीकरण पूर्ण नहीं है क्योंकि बहुत से ऐसे राग हैं जिनके आरोह में तथा अवरोह में स्वरों की संख्याओं में अन्तर है जैसे राग खमाज है जिसके आरोह में ६ स्वर लगते हैं तथा अवरोह में ७ स्वर लगते हैं। इसलिये राग के आरोह व अवरोह का ध्यान रख कर इन तीन मुख्य जातियों की ३-३ उपजातियाँ हैं जो इस प्रकार हैं :—

संपूर्ण	षाड़व	औड़व
(१) संपूर्ण—संपूर्ण	(१) षाड़व—संपूर्ण	(१) औड़व—संपूर्ण
(२) संपूर्ण—षाड़व	(२) षाड़व—षाड़व	(२) औड़व—षाड़व
(३) संपूर्ण—औड़व	(३) षाड़व—औड़व	(३) औड़व—औड़व

इस प्रकार कुल ६ जातियाँ होती हैं जिनके अन्तरगत प्रत्येक राग आ जाता है :—

[१] संपूर्ण—संपूर्ण—जिसके आरोह तथा अवरोह दोनों में ७-७ स्वर हों।

[२] संपूर्ण-षाड़व—जिसके आरोह में ७ स्वर व अवरोह में ६ स्वर हों।

[३] संपूर्ण-औड़व—जिसके आरोह में ७ स्वर व अवरोह में ५ स्वर हों।

[४] षाड़व-संपूर्ण—जिसके आरोह में ६ स्वर व अवरोह में ७ स्वर हों।

[५] षाड़व-षाड़व—जिसके आरोह में ६ स्वर व अवरोह में ६ स्वर हों।

[६] षाड़व-औड़व—जिसके आरोह में ६ स्वर व अवरोह में ५ स्वर हों।

[७] औड़व-संपूर्ण—जिसके आरोह में ५ स्वर व अवरोह में ७ स्वर हों।

[८] औड़व-षाड़व—जिसके आरोह में ५ स्वर व अवरोह में ६ स्वर हों।

[९] औड़व-औड़व—जिसके आरोह में ५ स्वर व अवरोह में भी ५ स्वर हों।

थाट तथा राग में अन्तर

थाट तथा राग एक दूसरे से बिलकुल भिन्न हैं। इस अन्तर को इस प्रकार समझा जा सकता है:—

(१) थाट की उत्पत्ति सप्तक के १२ स्वरों से होती है। राग की उत्पत्ति थाट से होती है।

(२) थाट में ७ स्वर होना अनिवार्य है क्योंकि यदि थाट में ७ स्वर न होंगे तो उसमें से सात स्वर वाले राग उत्पन्न हो ही नहीं सकते।

राग में ७ अथवा ७ से कम स्वर भी आ सकते हैं। राग में कम से कम ५ स्वरों का होना आवश्यक है।

(३) थाट में सातों स्वर क्रमानुसार होना चाहिये। यानी सा रे ग म प ध नि इस क्रम से होना चाहिये।

राग में स्वरों का क्रमानुसार होना आवश्यक नहीं है।

(४) थाट में केवल आरोह होता है। अवरोह की आवश्यकता थाट में नहीं है।

राग में आरोह व अवरोह दोनों का होना आवश्यक होता है।

(५) थाट में रंजकता का होना आवश्यक नहीं है। और इसलिये उसमें एक स्वर के दो रूप आ सकते हैं।

राग में रंजकता का होना आवश्यक है और इस कारण एक स्वर के दो रूप नहीं आना चाहिये।

(६) थाट में वादी—सम्वादी स्वरों की आवश्यकता नहीं है।

राग में वादी सम्वादी स्वरों का होना आवश्यक है।

(७) थाट का नामकरण उससे निकले हुये किसी प्रसिद्ध राग के नाम पर ही होता है। जैसे थाट खमाज से एक प्रसिद्ध राग खमाज उत्पन्न हुआ है और उसी के नाम से यह थाट पुकारा जाता है।

राग का नामकरण स्वतन्त्र है। अर्थात् जिस प्रकार थाट का नाम उससे उत्पन्न प्रसिद्ध राग के नाम पर रखते हैं राग का नाम उस प्रकार न रक्खा जाकर कोई स्वतन्त्र नाम राग को दिया जाता है।

———

तृतीय अध्याय

अलंकार

कुछ विशेष नियमों से बंधे हुये स्वर समुदायों को अलंकार अथवा पल्टा कहते हैं। ग्रन्थकार अलंकार की परिभाषा इस प्रकार देते हैं :— विशिष्ट वर्ण संदर्भमलंकरं ।

अर्थात किसी विशिष्ट वर्ण समुदाय को अलंकार कहते हैं। अलंकार को ही पल्टा भी कहत हैं। अलंकार में एक विशेष नियम रहता है जैसे—सारेग, रे ग म, ग म प, मपध पधनि, धनिसां। यहाँ पर स्वरों की एक नियमित रचना है। अलंकार में आरोह तथा अवरोह दोनों होते हैं तथा दोनों में स्वर एक ही क्रम या नियम से रहते हैं जैसे—सारेग, रे ग म, ग म प, मपध, पधनि, धनिसां—आरोह। सांनिध, निधप, धपम, पमग, मगरे, गरेसा अवरोह।

अलंकार राग की सुन्दरता में एक महत्व पूर्ण स्थान रखते हैं। अलंकार का साधारण अर्थ आभूषण होता है। जिस प्रकार आभूषण स्त्री की सुन्दरता को बढ़ाता है उसी प्रकार अलंकार राग को सुन्दरता को बढ़ाता है।

दूसरा महत्वपूर्ण कार्य जो अलंकारों से होता है वह संगीत के नवीन विद्यार्थियों का है संगीत सीखने के लिये स्वर ज्ञान के लिये अलंकारों का अभ्यास आवश्यक होता है। अलंकारों के अभ्यास से नवीन विद्यार्थियों के गले से स्वर ठीक निकलते हैं तथा बाद में चल कर तानों व आलापों में भी सहायता मिलती है।

आलाप

किसी राग के स्वरों का उसके वादी, सम्वादी तथा विशेष स्वरों को दिखलाते हुये विस्तार करना तथा उसे वर्ण, गमक, अलंकार आदि से आभूषित करना ही आलाप कहलाता है। किसी राग का स्वरूप स्पष्ट करने के लिये उसके स्वरों को सजा सजा कर तथा विलंबित लय में उसका आलाप करते हैं। आलाप द्वारा ही गायक अथवा वादक श्रोताओं के सम्मुख राग का रूप अंकित करता है तथा अपने हृदयगत भावनाओं को राग के स्वरों के माध्यम से दूसरों तक पहुँचाता है। अतएव यह स्पष्ट है कि आलाप भाव प्रधान होते हैं। आलापसे ही रागों में रसानु भूति होती है। कुछ लोग इसे अनिबद्ध गायन भी कहते हैं क्योंकि यह ताल से बद्ध नहीं होता। गीत प्रारम्भ करने के पूर्व बिना ताल के गायक राग के आलाप श्रोताओं के समक्ष उपस्थित करता है। आलाप या तो आकार में गाये जाते हैं या नोम, तोम, त, न, री, द त न दीं आदि शब्दों में गाये जाते हैं।

आधुनिक समय में यह गायन प्रचलित है। प्राचीन समय में आलापों का प्रचार नहीं था। इसके स्थान पर प्राचीन काल में रागालाप, रुपकालाप, आलप्तिगान आदि का प्रचार था। परन्तु अधुनिक काल में यह सब नष्ट प्रायः हो गये हैं।

तान

तान शब्द का अर्थ तानना अथवा विस्तार करना है राग में लगने वाले स्वरों का विस्तार जल्द या द्रुतलय में करना तान कहलाती है। यदि आलापो को द्रुत लय में गाया अथवा बजाया

जाय तो वही तानें कहलावेंगी। आलाप और तानों में अन्तर लय का है तथा आलाप भाव प्रधान है और तानें चमत्कार व कला प्रधान होती हैं तान को कहते समय राग के चलन के साथ उसके वादी—सम्वादी, वर्ज्यावर्ज स्वरों का ध्यान रखना पड़ता है। तानों को कहने के लिये बड़े अभ्यास की आवश्यकता होती है। भिन्न भिन्न लयों की ताने हो सकती हैं जैसे दुगुन, तिगुन, चौगुन, अठगुन आदि की ताने।

तानों के प्रकार

आधुनिक संगीत में कई प्रकार की ताने सुनने को मिलती हैं जैसे—शुद्ध अथवा सपाट तान, कूट तान, मिश्र तान, जबड़े की तान, गमक की तान, खटके की तान, वक्र तान, फिरत की तान, इत्यादि। इनमें से मुख्य मुख्य तानों को नीचे दिया जाता है :—

(१) शुद्ध या सपाट तान :—जिस तान में स्वर क्रमानुसार हो उसे शुद्ध तान या सपाट तान कहते हैं। इस तान के लिये काफी तैयारी की आवश्यकता है। गायक दो या तीन सप्तक तक सपाट तानें खींचते हैं। इस तान को सरल तान भी कहते हैं जैसे—गम पध निसां रेंगं मंपं मगं रेसां निध पम गरे साऽ।

(२) कूट तान :—जिस तान में स्वर क्रमानुसार नहीं होते उसे कूट तान कहते हैं। इस तान में कोई विशेष क्रम नहीं रहता जैसे— गप धप पध पप गरे पगरे गरे गपध सांसां पप धध पप गरे गप गरे सासा।

(३) मिश्र तान :—इस तान में सपाट तान या सरल तान का तथा कूट तान का मिश्रण होता है मिश्रतान में भी कोई नियम

आदि नहीं होता जैसे— गम पनि सगं गंरें सानि रेसां निधु पप गम पसां रेंरें सांसां धप मग रेस ।

[४] अलंकारिक तान—इस तान म अलंकारों के नियमों का पालन किया जाता है। आरोह व अवरोह दोनों में एक ही नियम के अनुसार स्वरों की रचना होती है जैसे :—

सारेगग, रेगमम, गमपप, मपधध, पधनिनि, निधपप, धपमम, पमगग, मगररे, गरेसासा ।

[५] वक्रतान—इस तान की चाल वक्र होती है। अधिकतर ऐसे रागों में जिनमें वक्र स्वरों का अधिक प्रयोग होता है यह तान ली जाती है जैसे राग गौड़सारंग में :—

निसा गरे मग पम धप रेग रेम गप मग परे साऽ ।

[६] गमक की तान—गमक के स्वरों का प्रयोग जिस तान में होता है वह गमक की तान कहलाती है। इस तान में स्वरों को कहते हुये उन्हें अन्दोलित किया जाता है और उन्हें हृदय से निकला जाता है। अच्छे अभ्यास के उपरान्त ही यह तान कहना सम्भव होता है।

[७] जबड़े की तान—जबड़े की कोई विशेष तान नहीं होती परन्तु किसी भी तान को जब जबड़े द्वारा गाया जाता है तो वह जबड़े की तान कहलाती है।

[८] छूट की तान—तार सप्तक के किसी एक स्वर से एक बार ही सपाट तान खींचने को छूट की तान कहते हैं। इस तान में गायक को ताल पर अधिकार होना चाहिये। उदाहरण के लिये जैसे— पंऽ गंरे सांनि धप गम रेसा

इसी प्रकार अनेक प्रकार की ताने ख्याल गायकी में प्रचलित हैं जैसे – खटके की तान, झटके की तान, लड़न्त की तान, सारङ्गी की तान, गिटकिरी की तान, फिरत की तान इत्यादि। विभिन्न लयों में भी तानों के अनेक प्रकार सुनने में आते हैं।

बोलतान

गायन में गीत के बोलों को लेकर भिन्न भिन्न स्वर व तान-पल्टों के साथ गाना बोलतान कहलाती है। बोलतान का सरल अर्थ होता है "बोलों की तान" अर्थात् किसी गीत के बोलों को विभिन्न प्रकार की तानों द्वारा प्रस्तुत करना। यह प्रकार गायन में बड़ा मधुर प्रतीत होता है। राग के स्वरों के माध्यम से गीत के बोलों का उच्चारण करते हुये आलाप करना, बोल बनाना कहलाता है। लय में सुन्दर अलंकार व पल्टों के साथ इन्हीं बोलों को बोलतान कहते हैं। उदाहरण के लिये विहाग राग के गीत के "अब हूँ लालन मैंका जुग बीत गये रे" चरण की बोलतान इस प्रकार हो सकती है –

सारे सासा पध पप। गप मग रेसा निसा।
अऽ बऽ हूँऽ लऽ। लऽ नऽ मेंऽ काऽ।
गम पनि सांगं रेंसां। निध पप गरे सासा।
जुऽ गऽ बीऽ तऽ। गऽ ऽऽ येऽ रेऽ।

पकड़

रागों में कुछ ऐसे विशिष्ट स्वर समुदाय होते हैं जिनके द्वारा राग स्पष्ट हो जाता है। ऐसे समुदायों को ही राग की पकड़

कह कर पुकारते हैं। कहने का तात्पर्य यह हुआ कि पकड़ राग के स्वरों का वह विशिष्ट समुदाय है जिससे राग की पहिचान होती है। राग की पकड़ को बारम्बार कह कर राग का स्वरूप श्रोताओं के सामने रक्खा जाता है। उदाहरण के लिये राग खमाज की पकड़ इस प्रकार है :—नि ध, म प ध, म ग। इस स्वर-समुदाय के कहने से ही राग की पहचान होती है तथा राग का स्पष्टीकरण करने के लिये इस स्वर समुदाय को बार बार लिया जाता है।

वक्र स्वर

आरोह व अवरोह में किसी स्वर तक जाकर पीछे के स्वर पर लौट आते हैं परन्तु फिर पहले वाले स्वर को छोड़ अथवा टाल कर आगे बढ़ जाते हैं। यहाँ पर जिस स्वर तक जाकर लौटते हैं उसे वक्र स्वर कहते हैं। उदाहरण देने पर यह बात स्पष्ट हो सकती है जैसे—प ध नि ध सां। यहाँ पर 'नि' स्वर तक जाकर फिर 'ध' स्वर पर लौट आते हैं तथा आगे बढ़ने के लिये पहला स्वर 'नि' छोड़ कर आगे के स्वर कहते हैं। इसलिये 'नि' स्वर वक्र हुआ। यह आरोह में वक्र स्वर का उदाहरण है। इसी प्रकार अवरोह में भी वक्र स्वर हो सकता है जैसे—प म ग म रे सा। यहाँ पर 'ग' स्वर तक आकर पीछे 'म' स्वर पर लौटते हैं तथा फिर पहले वाले स्वर 'ग' को छोड़ कर आगे रे सा आदि कहते हैं। इस तरह यहाँ पर 'ग' स्वर वक्र हुआ।

आरोह-अवरोह

किसी स्वर से ऊपर के स्वर क्रमानुसार कहने को आरोह कहते हैं जैसे—स रे ग म प ध नि।

तथा ऊपर के स्वर से नीचे के स्वर क्रमानुसार कहने को अवरोह कहते हैं जैसे—सां नि ध प म ग रे सा।

अर्थात सप्तक के स्वरों की सीढ़ी पर चढ़ने को आरोह व उतरने को अवरोह कहा जाता है।

वर्ज्य स्वर

जो स्वर राग में प्रयोग नहीं किया जाता वह राग का वर्जित स्वर कहलाता है। वर्जित माने जो प्रयोग न किया जाय। उदाहरण के लिये जैसे राग भूपाली में 'म' व 'नी' स्वर प्रयोग नहीं किये जाते। इससे 'म' व 'नि' स्वर राग भूपाली के वर्ज्य स्वर हुये। बहुत से रागों में ऐसे भी वर्ज्य स्वर होते हैं जो केवल आरोह या अवरोह में होते हैं। यदि केवल आरोह में वर्जित है तो उसका प्रयोग अवरोह में किया जाता है। जैसे राग खमाज के आरोह मे 'रे' स्वर वर्ज्य है परन्तु अवरोह में उसका प्रयोग होता है।

वादी स्वर

राग में एक ऐसा प्रबल स्वर होता है जिसका प्रयोग अन्य सब स्वरों से अधिक होता है तथा गायक राग के विस्तार में उस स्वर का प्रयोग बार बार करता है जिससे राग स्पष्ट हो जाता है। राग के ऐसे ही स्वर को राग का वादी स्वर कहते हैं। 'वदति इति वादी' यानी जिस स्वर से राग की परख होती है वही वादी स्वर है। वादी स्वर बड़े महत्व का होता है। बहुत से ऐसे राग हैं जिसका स्वरूप एक सा है परन्तु केवल वादी स्वर भिन्न होने से वे एक दूसरे से अलग स्पष्ट हो जाते हैं। वादी स्वर को राग का प्रधान स्वर, जीव स्वर, अंश स्वर तथा राग का राजा आदि

नामों से पुकारा जाता है। उदाहरण के लिये जैसे राग काफी का वादी स्वर पंचम है इसलिये राग काफी में पंचम स्वर का विशेष महत्व है।

संवादी स्वर

जो स्वर राग में वादी स्वर की अपेक्षाकृत कम तथा और राग में लगने वाले सब स्वरों से अधिक प्रयोग किया जाता है, संवादी स्वर कहलाता है। राग में वादी स्वर के बाद इसी स्वर का महत्व होता है यदि राग रूपी राज्य में वादी स्वर राजा है तो संवादी स्वर मंत्री कहलाता है।

वादी स्वर व संवादी स्वर का आपसी सम्बन्ध ८ या १२ श्रुतियों का होता है अर्थात् षड़ज-मध्यम भाव या षड़ज-पंचम भाव से होता है। यदि वादी पूर्वांग में होता है तो संवादी उत्तरांग में होता है और यदि वादी उत्तरांग में होता है तो संवादी पूर्वांग में होता है। जैसे राग कल्याण में वादी स्वर गन्धार है और संवादी निषाद है तथा राग काफी में पंचम वादी है और षड़ज संवादी है।

अनुवादी स्वर

वादी तथा सम्वादी स्वरों को छोड़कर, राग में लगने वाले और सब स्वर अनुवादी स्वर कहलाते हैं। जैसे राग कल्याण में ग व नि (जो वादी-संवादी हैं) को छोड़कर और जितने भी स्वर प्रयोग में आते हैं अनुवादी कहलाते हैं। अनुवादी स्वरों की उपमा सेवकों या अनुचरों से दी जाती है।

विवादी स्वर

कुछ स्वर ऐसे भी होते हैं जो राग में प्रयोग नहीं किये जाते हैं तथा इनको लगाने से राग बिगड़ने का डर रहता है। ऐसे स्वर विवादी स्वर होते हैं। इन स्वरों की उपमा शत्रु से दी गयी है। जिस प्रकार शत्रु केवल हानि ही करता है उसी प्रकार विवादी स्वर भी राग की शोभा को बिगाड़ता है। परन्तु विद्वान लोग राग की सुन्दरता को निखारने के लिये इन स्वरों का प्रयोग कभी कभी कर देते हैं। जैसे राग भैरवी में तीव्र मध्यम व शुद्ध रिषभ आदि का उपयोग होता है। यह प्रयोग राग की सुन्दरता को बढ़ाने के लिये कभी कभी किया जाता है।

विवादी स्वर का प्रयोग

यह बतलाया जा चुका है कि कुशलता से राग की शोभा को बढ़ाने के लिये विवादी स्वर का कभी कभी प्रयोग किया जाता है। रागों में न लगने वाले स्वरों में कुछ स्वर ऐसे हो सकते हैं जिनका राग में चलन हो सकता है तथा जिनके लगाने से राग की वैचित्रता बढ़ती है। कुछ रागों में विवादी स्वरों ने महत्वपूर्ण स्थान ग्रहण कर लिया है जैसे हमीर, केदार, कामोद आदि रागों में कोमल निषाद का प्रयोग बहुतायत से होता है। आजकल इन रागों में कोमल निषाद विवादी न रह कर अनुवादी के रूप में आ गया है। गायक अधिकतर हमीर में –ग म ध, नि ध म प, अथवा केदार में म प ध नि ध प म प ध प म, आदि कहते हुये सुना जाता है। इसी प्रकार कामोद, छायानट व गौड़सारंग आदि रागों में भी विवादी स्वर (कोमल निषाद) का महत्व है।

आजकल कई मिश्र रागों में अनेक स्वर जो उनके नहीं हैं अधिकाधिक प्रयोग में लाये जाते हैं जैसे पीलू, भैरवी, काफी आदि रागों में अनेक स्वर विवादी के रूप में प्रयोग किये जाते हैं। भैरवी व पीलू रागों में बारह स्वरों के लगाने का प्रचार है। यह स्वर आजकल इस प्रकार लगाये जाते हैं जैसे अनुवादी स्वर। नीचे विवादी स्वरों का प्रयोग बतलाया जाता है:—

भैरवी में शुद्ध रे:—ध नि सा रे ग सारेसा।

भैरवी में तीव्र म:—सा रे ग म, म म ग रे सा, ग म ध प म ग रे सा।

पीलू में कोमल ध व शुद्ध नि:—ध प ग रे सानि, प ध नि सा।

राग काफी में शुद्ध नि, शुद्ध ग व कोमल ध:—ध म प धनि सां, नि ध प, म प ग रे, रे ग म ग रे, रे म प ध पमप ग रे।

इसी प्रकार विवादी स्वरों का प्रयोग होता है। परन्तु प्रयोग करने में राग के स्वरूप का ध्यान रखना आवश्यक है।

गमक

विशेष रूप से स्वरों के हिलाने को गमक कहते हैं। गमक की परिभाषा ग्रन्थकारों ने इस प्रकार की है :—

"स्वरस्य कंपो गमकः श्रोतृ चित्त सुखावहः" अर्थात् स्वरों के हिलाने को गमक कहते हैं जो श्रोताओं को सुनने में अच्छा लगता है। गमक १५ प्रकार की होती हैं।

(१) कंपित गमक (२) अंदोलित गमक (३) प्लावित गमक (४) उल्हासित गमक (५) आहत गमक (६) स्फुरित गमक (७) बली गमक (८) हुँफित गमक (९) त्रिभिन्न गमक (१०) लीन गमक (११) कुरुला गमक (१२) नामित गमक (१३) मुद्रित गमक (१४) तिरिप गमक (१५) मिश्रित गमक।

हिन्दुस्तानी संगीत के क्रियात्मक अग में गमक शब्द की व्याख्या दूसरी प्रकार की गई है वास्तव में गमक के यह प्रकार इस रूप में न मिलकर दूसरे रूप में ही हिन्दुस्तानी संगीत में मिलते हैं। जैसे—मुर्की, मींड, खटका, जमजमा गिटकड़ी आदि गमक के इन्हीं प्रकारों के दूसरे रूप है। दक्षिणी या कर्नाटकी संगीत में गमक के ऊपर लिखे कुछ प्रकार मिलते हैं। हिन्दुस्तानी संगीत में गमक शब्द उन स्वरों के लिए प्रयोग किया जाता है जो हृदय पर जोर देकर निकाले जाते हैं। तान आलापों में गमक के स्वरों का प्रयोग किया जाता है।

मींड

किसी निश्चित स्वर से दूसरे निश्चित स्वर तक घर्षण द्वारा आना अर्थात् एक स्वर से दूसरे स्वर तक आते में बीच के स्वरों का केवल स्पर्शमात्र करना, मींड कहलाता है। कारण यह है कि मींड में दो स्वरों के बीच के स्वर स्पष्ट न कह कर घर्षण अथवा घसीट में उनका केवल स्पर्शमात्र करते हैं। मींड से रंजकता अधिक आ जाती है। वास्तव में मींड को हम गमक का एक प्रकार कह सकते हैं। मींड को लिखने के लिए एक स्वर को दूसरे से मिलाने के लिये ऊपर उल्टा चाँद बनाते हैं जैसे—प ग अथवा सं प।

खटका व मुर्की

खटका व मुर्की गमक के प्रकार है जिन्हें स्वतन्त्र नाम हिन्दुस्तानी संगीत में प्रदान कर दिये गये हैं। वास्तव में मुर्की व खटका गमक के स्फुरित प्रकार के अन्तरगत आते हैं। गायन अथवा वादन में जब दो स्वरों को झटके के साथ गाते अथवा बजाते हैं तब खटका कहलाता है और जब दो स्वरों से अधिक स्वरों को शीघ्रता से खटके के साथ कहा जाता है तब वह मुर्की कहलाती है। खटका का उदाहरण इस प्रकार है :—स (सा) = सा रेसा निसा या सा सारेसानिसा। मुर्की का उदाहरण इस प्रकार है— रेसानि अथवा रेसानि सारेसा आदि मुर्की व खटके का प्रयोग ठुमरी, टप्पा आदि गायन में अधिक होता है।

कंपन

स्वरों के हिलाने को कंपन कहते हैं वास्तव में कंपन और कंपित गमक में अन्तर नहीं है। इसलिये कंपन भी गमक का एक प्रकार ही हुआ।

अल्पत्व

राग विस्तार करते समय जिन स्वरों का महत्व बहुत कम होता है उन स्वरों का राग में अल्पत्व होता है। साधारणतः ऐसे स्वर जो किसी राग के विस्तार में बहुत कम प्रयोग में आते हैं अथवा जिन स्वरों को बारम्बार टाल दिया जाता है, उन

Download from www.vidyabharati.net

स्वरों का राग में अल्पत्व होता है। राग में किसी स्वर का अल्पत्व दो प्रकार से हो सकता है—(१) लंघन से तथा (२) अनभ्यास से। लंघन द्वारा अल्पत्व तब होता है जब किसी स्वर को लांघ कर टाल दिया जाता है। किसी राग के आरोह अथवा अवरोह में ऐसे स्वर को टाल कर उसका महत्व कम किया जाता है जैसे—राग शुद्धकल्याण के आरोह में 'नि' स्वर का अल्पत्व, लंघन अल्पत्व है क्योंकि शुद्धकल्याण राग के आरोह में उसे टाल दिया जाता है। वर्जित स्वर का राग में अल्पत्व नहीं कहा जा सकता क्योंकि अल्पत्व उसी स्वर का हो सकता है जो राग में प्रयोग तो होता हो पर उसका महत्व बहुत कम हो। अनभ्यास अल्पत्व तब होता है जब किसी स्वर का प्रयोग बहुत कम करते हैं। इस स्वर को अन्य स्वरों की तरह बार बार नहीं कहा जाता बल्कि कभी कभी अल्प मात्रा में उसका प्रयोग करते हैं जैसे राग भीमपलासी में धैवत स्वर का अनभ्यास अल्पत्व है क्योंकि उसका प्रयोग तो करते हैं परन्तु अन्य स्वरों की तरह उसका महत्व राग में नहीं है।

बहुत्व

राग विस्तार करते समय कुछ स्वर ऐसे होते हैं जिनको बार बार दर्शाया जाता है, राग में इन स्वरों का बहुत्व होता है। राग की शोभा बढ़ाने के लिये राग में जिन स्वरों का बहुत्व होता है उन्हें बार बार कहकर उनका दूसरे स्वरों से महत्व अधिक करते हैं। किसी स्वर का बहुत्व दो प्रकार से हो सकता है—(१) अलंघन से तथा (२) अभ्यास से। अलंघन से बहुत्व तब होता है जब उस स्वर को राग में बार बार प्रयोग करते हैं परन्तु उस पर अधिक रुकते नहीं हैं। उदाहरण के लिये जिस प्रकार राग यमन में

तीव्र मध्यम का बहुत्व है। आरोहावरोह करते हुये तीव्र मध्यम को बार बार कह कर उसका अलंघन बहुत्व करते हैं जैसे—

। । । । ।
प म ग, रे ग, म प ध म प म ग तीव्र मध्यम को राग यमन में टाला नहीं जा सकता है। अभ्यास बहुत्व उस स्वर को प्राप्त होता है जो राग में बार बार प्रयोग होता है तथा जिस पर बार बार अभ्यास अथवा ठहराव होता है। उदाहरण के लिये जिस प्रकार राग बागेश्री में धैवत स्वर पर अभ्यास बहुत्व होता है। राग बागेश्री में धैवत स्वर का बार बार प्रयोग करके उसपर ठहराव भी करते हैं जैसे—ग म धऽऽऽनि धऽऽम धऽम ग रे सा। इसी प्रकार राग हमीर में भी धैवत स्वर का अभ्यास बहुत्व होता है।

राग में वादी-सम्वादी स्वरों का बहुत्व तो होता ही है परन्तु उनके अलावा भी कुछ स्वरों को बहुत्व प्राप्त होता है।

तिरोभाव

राग का विस्तार करते हुये कशल गायक कभी कभी समप्रकृत रागों की छाया दिखा कर श्रोताओं के मन में विचित्रता उत्पन्न कर देते हैं। ऐसे समय में श्रोता दूसरे राग की झलक स्पष्ट सुनते हैं। इस क्रिया को राग का तिरोभाव कहते हैं। परन्तु यह तिरोभाव बहुत कम समय में ही राग के विशेष स्वरों द्वारा नष्ट कर दिया जाता है। कभी कभी अपने आप राग विस्तार करने में समप्रकृत रागों की छाया उत्पन्न हो जाती है। तिरोभाव साधारणतः दो प्रकार से होता है- (१) राग के समप्रकृत राग अथवा उस राग से मिलते जुलते स्वर लगने वाले रागों की छाया आने पर (२) राग के विभिन्न स्वरों के प्रयोग से राग का रूप बदल जाने पर।

आविर्भाव

राग का विस्तार करते समय जब किसी अन्य राग की झलक स्पष्ट हो जाती है अथवा जब उस राग के भिन्न भिन्न स्वरों से राग का स्वरूप बदल जाता है तब कुशल गायक राग के प्रमुख स्वरों को लगा कर फिर श्रोताओं के मन में अपने राग का स्वरूप अंकित कर देता है। ऐसा करने से श्रोताओं के मन में समप्रकृत राग का स्वरूप नष्ट प्राय: हो जाता है। इसे राग का आविर्भाव कहते हैं। राग में तिरोभाव व आविर्भाव एक साथ ही साथ एक के बाद होते हैं। अर्थात जैसे ही राग में तिरोभाव होता है वैसे ही गायक समप्रकृत राग का स्वरूप या झलक नष्ट करने के लिये फिर अविर्भावि करता है। नीचे तिरोभाव व अविर्भाव के दो उदाहरण दिये जाते हैं:—

(१) राग में समप्रकृत राग का तिरोभाव तथा अविर्भाव—

राग बिहाग—ग म ग, ग म प नि, ध प, ग म ग, ग म प नि सां।

राग शंकरा का तिरोभाव—सां निप, प ग, ग प रे ग रे सा।

आविर्भाव—सा म ग, प ध ग म ग, ग म प म ग म ग, रे सा। दूसरे प्रकार से तिरोभाव तब होता है जब राग के भिन्न स्वरों से राग का स्वरूप छिप जाता है:—

राग खमाज—ग म प, नि ध, म प ध, म ग, ग म प ध नि सां।

तिरोभाव—नि प, म ग म, सा ग रे नि, सा ग म।

आविर्भाव—ग म प ध नि ध, म प ध म ग, रे सा।

(२) राग भैरवी – ग म ध, नि सां, रें सां, नि सां ध प, ध सां।

तिरोभाव (राग मालकोस) ध म ग, सा ग म, ग

अविर्भाव – सा रे सा, ग म ध प म ग म ग रे सा।

मुखचालन

राग के स्वर विस्तार को विभिन्न अलंकारों, गमक, मींड आदि से सजा कर गाना अथवा बजाना मुखचालन कहलाता है। आधुनिक समय में यह शब्द प्रयोग नहीं किया जाता है।

रागालाप

पुराने समय में आलाप करने का यही ढंग प्रचलित था। इसे अनिबद्ध गान कह कर पुकारते थे। गायक गीत गाने के पूर्व उस राग का स्वरूप रागालाप द्वारा खींचता था। रागालाप द्वारा राग की १० बातों को दिखलया जाता था। राग की १० बातें इसप्रकार हैं:– (१) ग्रह (२) अंश (३) न्यास (४) अल्पत्व (५) बहुत्व (६) षाड़त्व (७) औड़त्व (८) अपन्यास (९) मन्द्र (१०) तार। आजकल इसका प्रचार नहीं है।

रुपकालाप

प्राचीन समय में आलाप करने का दूसरा प्रकार रुपकालाप कहलाता था। इसमें गायक विभिन्न प्रकार से राग का विस्तार करता था। यह प्रकार अनिबद्ध गायन के अन्तरगत आता है। आजकल इस गायन का प्रचार नहीं है।

आलाप्तिगान

आलाप्ति गान प्राचीन समय में प्रचलित था। इस में राग का पूर्ण स्पष्टीकरण होता है। राग का विस्तार करते समय अविर्भाव व तिरोभाव के साथ राग का स्पष्टीकरण करना अलाप्तिगान कहलाता है।

निबद्धगान

जो गायन ताल में बद्ध हो अर्थात वे स्वर या शब्द जो ताल में बंधे हो उसे निबद्धगान कहते हैं। प्राचीनकाल में निबद्धगान के तीन प्रकार प्रचलित थे जैसे (१) प्रबन्ध (२) वस्तु (३) रुपक। परन्तु आजकल इन तीन निबद्धगानों का प्रचार नहीं है। आधुनिक समय में निबद्धगान के अन्तरगत ख्याल, ठुमरी, दादरा, ध्रुपद इत्यादि सब आ जाते हैं।

अनिबद्धगान

जो गायन बिना ताल के गाया व बजाया जाता है वह अनिबद्धगान है। प्राचीन काल में अनिबद्धगान के अन्तरगत रुपकालाप, रागालाप, आलाप्ति आदि आते थे। आधुनिक समय में अनिबद्धगान के अन्तरगत आलाप आते हैं।

नायकी

गुरु परम्परा से सीखी हुयी चीज को बिलकुल उसी ढंग से गाने को नायकी कहते हैं। अर्थात जैसा गुरु ने बतलाया है उसी प्रकार किसी गीत को गाना तथा उसमें अपनी ओर से कोई

विशेषता न लगाना नायकी कहलाती है। उदाहरण के लिये भातखंडे जी की क्रमिक पुस्तकों में लिखे सारे गीत नायकी के अन्तरगत आते हैं।

गायकी

गुरु परंम्परा से बताये हुये गीत को अपने अभ्यास व योग्यता के अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकार से सजाते हुये गाना गायकी कहलाती है। अर्थात जब नायकी को गायक, भिन्न भिन्न आलाप, तान, बोल-तान व अलंकारों से सजा कर गाता है तब वह गायकी कहलाती है।

ग्रह, अंश और न्यास स्वर

प्राचीन काल में रागों के निश्चित स्वर थे जिनसे राग आरम्भ होते थे तथा कुछ निश्चित स्वरों पर ही उनका अन्त होता था। आधुनिक समय में ऐसे नियम प्रयोग में नहीं लाये जाते। ग्रह स्वर व न्यास स्वर प्राचीन काल में प्रयोग किये जाते थे परन्तु अंश स्वर आज भी प्रयोग किया जाता है। अंश स्वर को आजकल वादी स्वर के नाम से पुकारते हैं।

ग्रह-स्वर—ग्रह का अर्थ घर से है। प्राचीन काल में राग का आरम्भ जिस स्वर से होता था वह स्वर उस राग का ग्रह स्वर कहलाता था। आसावरी राग के लक्षण में लिखा है "मध्यम सुर ग्रह न्यसु पचम" अर्थात आसावरी राग में ग्रह स्वर 'मध्यम' है।

अंश-स्वर—राग में जिस स्वर का प्रयोग सबसे अधिक होता है उसे अंश स्वर या वादी स्वर कहते हैं। यह नियम आज भी प्रचलित है। जैसे भूपाली राग में 'गन्धार' स्वर।

न्यास-स्वर—प्राचीन काल में जिस स्वर पर राग की समाप्ति होती थी अथवा जिस स्वर द्वारा किसी निश्चित राग का

अन्त किया जाता था उसे राग का न्यास स्वर कहते थे। आज कल यह नियम प्रचलित नींह है। जैसे उदाहरण के लिये आसावरी में "मध्यम सुर अरु न्यासमु पंचम" यानी आसावरी में पंचम न्यास स्वर है।

स्पर्श स्वर (कण स्वर)

गायन को श्रुति मधुर बनाने के लिये स्वरों के सूक्ष्म कणों का प्रयोग किया जाता है। मुख्य स्वरों पर अन्य स्वरों का स्पर्श करने से मुख्य स्वरों की मधुरता बढ़ती है। जैसे धैवत मुख्य स्वर को कहने के लिये बार बार निषाद का केवल कण या स्पर्श धैवत की मधुरता को बहुत बढ़ा देता है। स्पर्श स्वर को कण स्वर (Grace Note) भी कहते हैं। यह स्वर गले के तैयार होने पर ही सरलता से निकलते हैं। लिखने के लिये इन स्वरों को मुख्य स्वरों के ऊपर लिखते हैं जैसे $ग_{प}$ $प_{ग}$।

अपन्यास स्वर

प्राचीन काल में निबद्धगानों (प्रबन्ध,रूपक व वस्तु) के कई विभाग व उप-विभाग किये गये थे। इन विभागों के लिये स्वर निश्चित थे जिन पर इनकी समाप्ति होती थी। जिस प्रकार गीत जिस स्वर पर समाप्त होता था वह न्यास स्वर कहलाता था उसी प्रकार अन्य विभाग व उपविभागों के अंतिम स्वर को अपन्यास स्वर कहते थे।

सन्यास स्वर

अपन्यास के दो विभाग होते थे सन्यास तथा विन्यास सन्यास उन स्वरों को कहते थे जिन पर गीत के प्रथम भाग के

विभिन्न अवयव समाप्त होते थे। सरलता के लिये यदि हम मान लें कि गीत के पहले विभाग में चार उपविभाग हैं तो इन चार उपविभागों के अंतिम स्वर ही सन्यास स्वर कहलायेंगे ।

विन्यास स्वर

गीत के विभिन्न भागों को प्रथम छोटे छोटे अवयव जिन स्वरों पर समाप्त होते थे उन्हें विन्यास स्वर कहते थे। आधुनिक समय में ऊपर लिखे स्वरों का प्रचार नहीं है। आजकल केवल न्यास स्वर का कुछ प्रचार है।

विदारी

गीतों के विभिन्न विभागों को अथवा रागालाप के विभिन्न खंडों को विदारी कहते हैं। विदारी शब्द का प्रयोग प्राचीन काल में होता था। उस समय प्रबन्ध, रूपक आदि के विभिन्न अंग जो धातु कहलाते थे जैसे ध्रुव, उद्ग्राह, मेलापक, अंतरा व आभोग, विदारी कहलाते थे।

कुछ लोगों के विचार से अपन्यास, सन्यास, विन्यास स्वरों को विदारी स्वर कहते हैं। परन्तु यह मत ठीक नहीं है। विदारी गीत के विभागों को कहना ही अधिक उचित है।

स्थाय

राग विस्तार में छोटे-छोटे स्वर समुदायों को स्थाय कह कर पुकारते हैं। यह शब्द भी आधुनिक समय में प्रयोग नहीं किया जाता है।

उठाव

गायन में राग को जिस राग वाचक स्वर-समुदाय से प्रारम्भ करते हैं, उसे राग का उठाव कहते हैं। इस स्वर समुदाय में राग

में लगने वाले प्रमुख स्वरों तथा वादी-सम्वादी स्वरों का प्रयोग होता है। निश्चित उठाव से राग को आरम्भ करने से उनका स्वरूप स्पष्ट होता है। उठाव पूर्वांग तथा उत्तरांग में अलग अलग होते हैं। अर्थात् पूर्वांग का उठाव राग का विस्तार आरम्भ करने के समय कहते हैं तथा उत्तरांग का उठाव राग का अन्तरा प्रारम्भ करने के समय कहते हैं। उदाहरण के लिये केदार में पूर्वांग का उठाव इस प्रकार से होगा:—सा म, म प, ध प म।
।
उत्तरांग का उठाव इस प्रकार होगा:—म प ध नि सां रें सां अथवा प प सां, रे सां।

चलन

राग के स्वरों में विस्तार करने के ढंग को राग का चलन कहते हैं। उठाव के बाद राग का विस्तार राग में लगने वाले स्वरों व वादी-सम्वादी स्वरों की सहायता से किया जाता है उसी को राग का चलन कहते हैं। उदाहरण के लिये राग केदार का चलन इस प्रकार से होगा:—

। ग
सा म, म प, ध प म, म प ध सां ध प म प ध प म, म प,
।
ध नि सां, ध प म प ध प म, म रे सा।

स्वस्थान

प्राचीन काल में आलाप गायन में एक विशेष नियम प्रचलित था जिसे स्वस्थान कहते थे। इस नियम के अनुसार राग का सारा विस्तार अंश अथवा वादी स्वर पर ही निर्भर रहता था। अंश स्वर स्थायी स्वर कहलाता था। इस नियम में चार स्वर प्रधान होते थे:—(१) स्थायी स्वर (२) द्वयर्ध स्वर (३) द्विगुण

स्वर (४) अर्ध स्थित स्वर। अंश स्वर ही स्थायी स्वर कहलाता था। स्थायी स्वर से चौथा स्वर द्वयर्ध स्वर कहलाता था व स्थायी स्वर से आठवां स्वर द्विगुण स्वर कहलाता था तथा द्वयर्ध व द्विगुण के बीच के स्वर अर्ध स्थित स्वर कहलाते थे। गायक अपने मन से किसी पर न्यास आदि नहीं कर सकता था उसे स्वस्थान नियम से ही गाना पड़ता था।

आक्षिप्तिका

संगीत में ताल, स्वर व शब्द इन तीनों की पूर्ण रचना को आक्षिप्तिका कहते हैं। यह एक प्रकार से निबद्धगायन है। जितने भी ख्याल, ध्रुपद, धमार, ठुमरी आदि सुनने में आती हैं सब आक्षिप्तिका कही जा सकती हैं।

वाग्गेयकार

प्राचीन समय में जो संगीत का विद्वान शब्द रचना व स्वर रचना दोनों में निपुण होता था उसे वाग्गेयकार कहा जाता था। इसलिये वाग्गेयकार को संगीत तथा साहित्य दोनों के ज्ञान की आवश्यकता होती है। वाग्गेयकार शब्द 'वाक्' तथा 'गेय' दो शब्दों का मिश्रण है। 'वाक्' के अर्थ है पद्य रचना तथा 'गेय' का अर्थ है स्वर रचना।

ग्राम

७ स्वरों के सप्तक को २२ श्रुतियों पर भिन्न भिन्न प्रकार से स्थापित करने को ग्राम कहते हैं। उदाहरण के लिये यदि हम "चतुश्चतुश्चतुश्चैव षड्ज मध्यम पंचमा" के आधार

से बाइस श्रुतियों पर सात स्वरों की स्थापना करें तो एक ग्राम बन जाता है। यदि अब यही सात स्वर किसी अन्य क्रम से २२ श्रुतियों पर स्थापित किये जाँय तो एक अन्य ग्राम बनता है। कहने का अर्थ यह हुआ कि सात स्वरों को निश्चित श्रुतियों पर स्थापित करने को ग्राम कहते हैं।

प्राचीन काल में कुल तीन ग्राम माने जाते थे:—

(१) षडज ग्राम
(२) मध्यम ग्राम
(३) गान्धार ग्राम

षडज ग्राम:—यदि सप्तक के सात स्वर बाइस श्रुतियों पर इस प्रकार स्थापित किये जायँ:—सा—४ थी पर, रे—७वीं पर, ग—९वीं पर, म—१३वीं पर, प—१७वीं पर, ध—२० वीं पर व नि—२२वीं पर तो षडज ग्राम बनता है। परन्तु इस क्रम के अतिरिक्त यदि कोई स्वर अपनी श्रुति बदल देता है तो वह फिर षडज ग्राम नहीं रहेगा। आधुनिक समय में केवल इसी ग्राम का प्रचार है अन्य ग्राम आजकल प्रचलित नहीं हैं।

मध्यम ग्राम:—षडज ग्राम के स्वरों में से यदि केवल पंचम स्वर को एक श्रुति कम कर दिया जाय तो मध्यम ग्राम बनता है। कहने का अर्थ यह है कि यदि षडज ग्राम का पंचम स्वर जो १७वीं श्रुति पर है, १६वीं श्रुति पर कर दिया जाय तो मध्यम ग्राम बनता है। मध्यम ग्राम इसका नाम इसलिये पड़ा क्योंकि इसे मध्यम स्वर से प्रारम्भ किया जाता है। मध्यम ग्राम के अनुसार ७ स्वर २२ श्रुतियों पर इस प्रकार स्थापित होंगे:—सा—४ थी पर, रे—७वीं पर, ग—९वीं पर, म—१३वीं पर, प—१६वीं पर, ध—२०वीं पर तथा नि—२२वीं पर। इस प्रकार श्रुतियों का अन्तर—४, ३, ३, ४, ३, ४, २, हुआ। परन्तु मध्यम

स्वर से आरम्भ करने पर श्रुतियों के अन्तर इस प्रकार होंगे – ४, ३, ४, २, ४, ३, २ अर्थात् म में ४, प में ३, ध में ४, नि में २, सा में ४, रे में ३ व ग में २ श्रुतियाँ होंगी।

मध्यम ग्राम का प्रचार प्राचीन काल में था परन्तु आधुनिक समय में इसका लोप होता जा रहा है केवल षडज ग्राम आजकल प्रचार में है। आधुनिक समय में कुछ ही ऐसे राग हैं जिनको गाने के लिये कभी कभी मध्यम स्वर को षडज मान कर गाते हैं जैसे पीलू।

गान्धार ग्राम:—गान्धार ग्राम की स्पष्ट व्याख्या शास्त्रों में नहीं मिलती क्योंकि इस ग्राम का लोप प्राचीन काल ही में होने लगा था। कुछ लोगों के मतानुसार प्राचीन समय में निषाद ग्राम का प्रचार था जिसे गंधर्व लोग गाया करते थे। गन्धर्व लोगों के अपनाने के कारण निषाद ग्राम को 'गंधर्व ग्राम' कहने लगे और बाद में बिगड़ कर गान्धार ग्राम कहलाने लगा।

गान्धार ग्राम की स्थापना यदि २२ श्रुतियों पर करें तो गान्धार स्वर को षडज माना जावेगा। इस प्रकार ग, ध व नि स्वरों में ४–४ श्रुतियाँ होंगी, सा व म स्वरों में ३–३ श्रुतियां होंगी तथा रे व प में २–२ श्रुतियां होंगी।

मूर्छना

प्राचीन काल में ग्रामों से ही मूर्छनाओं की उत्पत्ति होती थी। किसी एक ग्राम के ७ शुद्ध स्वरों को बारी बारी से प्रत्येक को षडज मानकर आरोहावरोह करने से विभिन्न मूर्छनायें बनती थीं। उदाहरण के लिये षडज ग्राम के सात स्वरों को क्रम से एक-एक करके षड्ज माना जाय और फिर उसका आरोहावरोह किया

जाय अर्थात् पहली मूर्छना षडज स्वर से आरम्भ करके शुद्ध स्वरों का आरोहावरोह करने पर बनेगी, दूसरी मूर्छना मन्द्र निषाद को सा मानकर आरोहावरोह करने पर बनेगी। इसी प्रकार षडज ग्राम के सात स्वरों को बारी-बारी से षडज मानकर आरोहावरोह करने से कुल ७ मूर्छनायें बन सकती हैं। प्राचीन काल में कुल ३ ग्राम माने जाते थे इसलिये कुल तीन ग्रामों की मूर्छनायें २१ होती थीं। जो इस प्रकार हैं :—

(१) आमोदिनी (२) दीर्घा, (३) आनन्दी (४) विश्रान्तिणी (५) कोमली (६) आवारिनी (७) लज्या (८) विनोदनी (९) विखरा (१०) प्रलापी (११) कामिनी (१२) निर्मली (१३) विहारिनी (१४) संकोचो (१५) प्रमोदिनी (१६) वयंका (१७) आलापी (१८) आरोभिनी (१९) जमली (२०) विस्तारिनी (२१) गोपी। प्राचीन काल में इन विभिन्न मूर्छनाओं से ही रागों की उत्पत्ति होती थी। परन्तु आधुनिक समय में इन मूर्छनाओं का बिलकुल प्रचार नहीं रह गया है। आधुनिक समय में रागों की उत्पत्ति थाटों से मानी जाती है।

स्पष्टता के लिये प्राचीन काल के षडज ग्राम की ७ मूर्छनाओं को आधुनिक थाटों की दृष्टि से इस प्रकार कर सकते हैं :—

षडज ग्राम के षडज को सा मान कर आरोहावरोह कहने पर आधुनिक बिलावल थाट की उत्पत्ति होती है।

(२) षडज ग्राम के मन्द्र निषाद को सा मानकर आरोहावरोह कहने से आधुनिक कोई थाट नहीं बनता (सारे ग म म प नि सां)

(३) षडज ग्राम के मन्द्र धैवत को सा मानकर आरोहावरोह कहने से आधुनिक आसावरी थाट की उत्पत्ति होती है।

(४) षडज ग्राम के मन्द्र पंचम को सा मान कर आरोहा-वरोह कहने से आधुनिक खमाज थाट की उत्पत्ति होती है।

(५) षडज ग्राम के मन्द्र मध्यम को सा मान कर आरोहा-वरोह कहने से आधुनिक यमन थाट की उत्पत्ति होती है।

(६) षडज ग्राम के मन्द्र गन्धार को सा मान कर आरोहा-वरोह कहने से आधुनिक भैरवी थाट की उत्पत्ति होती है।

(७) षडज ग्राम के मन्द्र ऋषभ स्वर को सा मान कर आरोह-वरोह कहने से आधुनिक काफी थाट की उत्पत्ति होती है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि प्राचीन काल की मूर्छनायें आधुनिक थाटों के समान थीं।

धातु

मध्यकाल के पूर्व ध्रुपद, धमार, ख्याल आदि गीतों का प्रचार नहीं था। उस समय प्रबन्ध, वस्तु रूपक आदि गायन निबद्ध गान के अन्तरगत गाये जाते थे। प्रबन्ध के विभिन्न भागों अथवा अवयवों को ही धातुओं के नाम से पुकारा जाता था। जिस प्रकार आधुनिक समय में ध्रुपद गायन के चार विभिन्न अवयव—स्थाई, अन्तरा, संचारी व आभोग नामों से पुकारे जाते हैं उसी प्रकार प्रबन्ध के विभिन्न अवयव धातुओं के नाम से पुकारे जाते थे। शारंगदेव ने अपनी पुस्तक 'संगीत रत्नाकर' में धातुओं का वर्णन इन नामों से किया है— उद्ग्राह, मेलापक, ध्रुव, अन्तरा और आभोग।

बाणी

प्राचीन काल में गायकों के गाने की अलग अलग शैलियाँ थीं, इन्हीं शैलियों के कारण उनकी विभिन्न बाणियाँ बन गई थीं।

वास्तव में जिस प्रकार आधुनिक समय में गायकों व वादकों के विभिन्न घराने हैं तथा प्रत्येक घराने की गायन अथवा वादन-शैलियाँ अलग-अलग हैं उसी प्रकार प्राचीन काल में गायकों के विभिन्न घराने, वाणियाँ कहलाती थीं। यह वाणियाँ गायन शैलियों के अनुसार बनी थीं। प्राचीनकाल में गायन शैलियों को गीतियाँ (शुद्धा, भिन्ना, वेसरा, गौड़ी और साधारणी) कहते थे। यह वाणियाँ चार थीं :—

(१) खन्डारी :—इसके प्रचारक नौबत खाँ थे तथा इस शैली के अन्तरगत ध्रुपद, धमार आदि आते हैं।

(२) नोहारी :—इसके प्रचारक चांद खाँ थे। कुछ लोगों के विचार से नोहारी बाणी नव-रसों से सम्बन्धित है और इसके अन्तरगत ठुमरी, गज़ल, दादरा आदि आते हैं।

(३) गोबरहारी—तानसेन इस बाणी के प्रचारक माने जाते हैं। इसके अन्तरगत कुछ लोगों के विचार से ख्याल, तराना आदि आ सकते हैं।

(४) डागुर—इस बाणी के प्रचारकों के लिये मतभेद है। कुछ लोगों के विचार से इस के प्रचारक हरिदास स्वामी थे तथा कुछ लोगों के विचार से इस बाणी के प्रचारक सूरज खाँ थे। आज भी कुछ गायक अपने को डागुर बाणी के बतलाते हैं।

आधुनिक संगीत में गीत रचना के मुख्य नियम

किसी भी कविता को स्वर, ताल व राग आदि में बद्ध करने के लिये नीचे लिखी बातों पर ध्यान रखना आवश्यक है—

(१) कविता के रस को ध्यान में रखते हुये उसके अनुकूल ही राग की नियुक्ति।

(२) राग को समझने के बाद उस राग का मुख्य रूप ध्यान में रखना चाहिये।

(३) किस स्वर से राग को प्रारम्भ करना चाहिये तथा किस स्वर पर राग की समाप्ति करना चाहिये अर्थात ग्रह तथा न्यास स्वरों का ध्यान रखना चाहिये।

(४) स्थाई तथा अन्तरे में राग के अलग-अलग उठान व चलन हुआ करते हैं जिनका ध्यान रखना आवश्यक है।

(५) कविता के भावों के अनुकूल ही राग के स्वरों की रचना करनी चाहिये।

(६) कविता के शब्दों में विश्रांति स्थानों का ध्यान रखना चाहिये जिससे भावों का व अर्थ का स्पष्टीकरण हो सके। इसी प्रकार राग के स्वरों में भी विश्रांति स्थानों का ध्यान रखना चाहिये।

(७) ताल की नियुक्ति भी महत्व पूर्ण है। ऐसे ताल को चुनना चाहिये जिससे राग का व कविता का रस नष्ट न हो सके।

(८) ताल के आघातों का गीत के शब्दों से सम्बन्ध बहुत आवश्यक है। अर्थात गीत के किन किन शब्दों पर ताल के विभिन्न आघात हों, यह ध्यान रखना चाहिये। क्योंकि गीत के उचित स्थानों पर यदि ताल के आघात नहीं पड़ेंगे तो उसमें रसानुभूति नहीं हो सकेगी।

राग वर्गीकरण

राग वर्गीकरण की तीन पद्धतियां हैं:—

१ राग-रागिनी पद्धति।
२ रागाँग पद्धति।
३ थाट-राग पद्धति।

राग-रागिनी पद्धति

पुराने समय में रागों के परिवार मानने की प्रथा थी। रागों की रागिनियाँ होती थीं, पुत्र होते थे तथा पुत्र-वधु होती थीं। यही प्रथा राग-रागिनी पद्धति के नाम से प्रसिद्ध थी। इस पद्धति का प्रतिपादन जिन मतों ने किया है वह यह हैं:—

(१) सोमेश्वर या शिव मत:—इस मत के अनुसार ६ राग, प्रत्येक की ६—६ रागिनियाँ और आठ पुत्र माने जाते हैं। ६ राग इस प्रकार हैं:—भैरव, श्री, बसंत, पंचम, मेघ और नटनारायण।

(२) कल्लीनाथ मत:—इस मत के भी ६ राग, प्रत्येक की ६—६ रागनियाँ यानी कुल ३६ रागिनियाँ व आठ पुत्र। इस मत के अनुसार ६ राग तो वही हैं जो सोमेश्वर मत के हैं परन्तु रागिनियों व पुत्र-रागों में अन्तर है।

(३) भरत मत—इस मत के अनुसार ६ राग, प्रत्येक की ५-५ रागिनियाँ तथा आठ पुत्र व आठ पुत्र-वधु। इस मत के ६ राग यह है:—भैरव, मालकोस, हिंडोल, श्री, दीपक व मेघ।

(४) हनुमान मत—इस मत के ६ राग उसी प्रकार हैं जिस प्रकार भरत मत के हैं परन्तु प्रत्येक की ५-५ रागिनियाँ, पुत्र—रागों व पुत्र-वधु रागों में अन्तर है।

राग-रागिनी पद्धति का आधुनिक समय में बिलकुल प्रचार नहीं है। पटना के मुहम्मद रजा साहब ने यह पद्धति बिलकुल गलत बतलाई है। पुराने समय में जिस रूप में यह राग-रागिनियाँ, पुत्र व पुत्र-वधु थीं उनका वह रूप आज प्रचलित नहीं है।

रागांग-पद्धति

राग वर्गीकरण की दूसरी प्रणाली रागांग-पद्धति है। इस पद्धति के अनुसार मुख्य ३० राग माने गये हैं। इन्हीं ३० रागों के अन्तरगत अन्य प्रचलित राग गाये व बजाये जाते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि इन ३० रागों का स्वरूप इनसे सम्बन्धित अन्य रागों में पाया जाता है। इसलिये इन्हें अंग-राग कहा जाता है। इस पद्धति के अनुसार प्रत्येक प्रचलित राग किसी न किसी रागांग से गाया या बजाया जाता है। उदाहरण के लिये जैसे राग जैजैवन्ती, बागेश्री अंग से अथवा देश अंग से गाया जाता है। मुख्य ३० राग इस प्रकार हैं:—, भैरव, भैरवी, कल्याण, बिलावल, खमाज, काफी, पूर्वी, मारवा, तोड़ी, सारंग, भीमपलासी, आसावरी, ललित, पीलू, सोरठ, विभास, नट, शंकरा, श्री, बागेश्री, केदार, कानड़ा, मल्हार, हिन्डोल, बिहाग, कामोद, आसा, भूपाली, दुर्गा, भटियार इत्यादि।

थाट-राग पद्धति

रागों के वर्गीकरण का तीसरा सिद्धान्त थाट-राग पद्धति का है। इस पद्धति के अनुसार सारे रागों को दस थाटों के अन्तरगत माना गया है। कर्नाटकी संगीत में थाटों की संख्या ७२ मानी गई है परन्तु हिन्दुस्तानी संगीत में थाट कुल १० हैं जो इस प्रकार है:—बिलावल, खमाज, काफी, आसावरी, भैरव, भैरवी, यमन, मारवा, तोड़ी व पूर्वी।

ऊपर राग-वर्गीकरण की तीन पद्धतियों का वर्णन किया गया है। पुराने समय में राग-रागिनी पद्धति प्रचलित थी परन्तु मुहम्मद रज़ा साहब ने उसे झूंठा साबित किया है और थाट-राग पद्धति की स्थापना की हैं। रागांग पद्धति में रागों के स्वरूपों का

ध्यान अवश्य रक्खा गया परन्तु अंग-रागों की संख्या (३०) अधिक होने के कारण उसका महत्व कम हो गया। राग-रागिनी पद्धति का स्वरूप तो कहना सम्भव नहीं क्योंकि पुराने समय में इन राग-रागिनियों का दूसरा ही रूप था। थाट-राग पद्धति में स्वरूप स्थापित करने व स्वरों में साम्यता रखने का पूर्ण प्रयत्न किया गया है। यह ठीक है कि दस थाटों में आधुनिक सभी रागों का वर्गीकरण नहीं हो सकता परन्तु और दूसरे वर्गीकरण से इसे अधिक सफलता मिल सकी है।

इस लिये यह कहना अनुचित न होगा कि थाट-राग पद्धति सब सिद्धान्तों में श्रेष्ट मानी जाती है।

सहायक नाद

मुख्य नाद के आधार पर जो अन्य नाद उत्पन्न होते हैं उन्हें सहायक नाद कह कर पुकारा जाता है। क्योंकि यह नाद मूल नाद की सहायता के लिये उत्पन्न होते हैं, इसलिये सहायक नाद कहलाते हैं। भिन्न भिन्न वाद्यों में निकलने वाले सहायक नादों की संख्या अलग अलग होती है। मुख्य नाद के सहायक नादों की संख्या पर ही नाद की घनता स्थापित होती है जिससे नाद की जाति स्पष्ट होती है। कहने का अर्थ यह हुआ की सहायक नादों की संख्या के कारण ही हम नाद की जाति (Timbre) को पहिचानते हैं। साधारणतः सहायक नाद मुख्य नाद के दुगने, तिगुने, चौगुने, पंचगुने आदि अनुपातों में निकला करते हैं।

सहायक नादों के कारण ही हम यह कह सकते हैं कि तानपूरे में सातों स्वर निकलते हैं। परन्तु वास्तव में यदि निरीक्षण किया जाय तो हम मालूम कर सकते हैं कि तानपूरे में हमको

सात स्वर न मिल कर केवल ६ स्वर प्राप्त होते हैं। क्योंकि जब तानपूरा—प सा सा स स्वरों से मिला हो तो:—

प के तार से प्राप्त स्वर = प ध नि रे
सा " " " " " = सा रे ग प

अर्थात कुल स्वर प्राप्त हुये = सा रे ग प ध नि, केवल मध्यम प्राप्त नहीं हुआ। अब यदि हम तानपूरे को म सा सा सा स्वरों से मिलायें तो :—

म के तार से प्राप्त स्वर = म प ध सा
सा " " " " " = सा रे ग प

अर्थात कुल मिलाकर = सा रे ग म प ध, केवल निषाद स्वर प्राप्त नहीं हुआ।

वैज्ञानिक क्रम से किसी मुख्य नाद से किस प्रकार १ : २ : ३ : ४ : ५ : ६ : ७ : ८ आदि अनुपातों से सहायक नाद प्राप्त होते हैं, नीचे दिया जाता है:—(तानपूरे के सा के तार से प्राप्त सहायक नाद इस प्रकार हुये)—

१. सा = १२० अन्दोलन संख्या एक सेकिन्ड में।
२. १२० × २ = २४० = सा (मध्य सप्तक)
३. १२० × ३ = ३६० = प "
४. १२० × ४ = ४८० = सां (तार)
५. १२० × ५ = ६०० = गं "
६. १२० × ६ = ७२० = पं "
७. १२० × ७ = ८४० = निं अति कोमल)
८. १२० × ८ = ९६० = सां (अति तार)
९. १२० × ९ = १०८० = रें (अति तार)
१०. १२० × १० = १२०० = गं (अति तार)

इस प्रकार कुल प्राप्त स्वर = सा रे ग प हुए। इसी प्रकार अन्य स्वरों के भी सहायक नाद वैज्ञानिक क्रम से निकाले जा सकते हैं।

आश्रय राग

प्रत्येक थाट से राग की उत्पति होती है तथा प्रत्येक राग किसी न किसी थाट से उत्पन्न होता है। इसी कारण थाट जनक होता है और राग जन्य।

यह नियम है कि थाट का नामकरण उससे उत्पन्न किसी प्रसिद्ध राग के नाम द्वारा होता है अर्थात् थाट से उत्पन्न प्रसिद्ध राग के नाम से ही उस थाट का सम्बोधन होता है। यह राग थाट वाचक अथवा आश्रय राग कहलाता है। उदाहरण द्वारा यह बात स्पष्ट हो सकती है। सा रे ग म प ध नि, यह एक थाट है और यह भी माना जाय कि इससे एक प्रसिद्ध राग खमाज की उत्पत्ति होती है। खमाज राग एक प्रसिद्ध राग है इसकी जाति षाडव सम्पूर्ण है आरोह में 'रे' वर्जित करते हैं। विद्वानों ने इस थाट को प्रसिद्ध राग खमाज जो इसी थाट से उत्पन्न होता है, के नाम से ही संबोधित किया है। इधर खमाज राग आश्रय राग हुआ। थाट वाचक राग को ही आश्रय राग कहते हैं। हिन्दुस्तानी पद्धति में कुल १० थाट हैं और इसलिये कुल १० ही आश्रय राग हैं जिनके नाम बिलावल, कल्याण, खमाज, काफी, भैरव, आसावरी, भैरवी, मारवा, पूर्वी और तोड़ी हैं। आश्रय राग की एक और भी विशेषता यह होती है कि किसी थाट से उत्पन्न जितने भी राग होते हैं उन सब में थोड़ी बहुत छाया आश्रय राग की अवश्य होती है।

शुद्ध, छायालग तथा संकीर्ण राग

शुद्ध राग :—जिन रागों में शास्त्र शुद्ध नियमों का निर्वाह होता है तथा जो राग और अन्य रागों से सर्वथा स्वतन्त्र होते हैं, शुद्ध राग कहलाते हैं। इन रागों में दूसरे रागों की छाया नहीं आ सकती, इनका विस्तार स्वतन्त्र होता है, जैसे राग कल्याण, काफी इत्यादि। शुद्ध राग को शास्त्रकारों ने बताया है "शास्त्रोक्त नियमात् रंजकत्वम् भवति"। अर्थात् शास्त्रोक्त, नियमानुसार गाया जाकर रंजन करने वाला राग शुद्ध राग कहलाता है। अधिकतर शुद्ध राग से किसी एक ही रस की अनुभूति होती है।

छायालग राग :—कुछ राग ऐसे होते हैं जिनमें किसी अन्य राग की छाया स्पष्ट होती है, उन्हें छायालग राग कहते हैं। जैसे शुद्धकल्याण, मालगुंजी, पटदीप, बहार इत्यादि। शास्त्रकार छायालग राग को इस प्रकार कहते हैं "छायालगत्वम नामान्यच्छाया लगत्वेन रक्ति हेतुत्वभवति" अर्थात् छायालग रागों में अन्य किसी राग की छाया दीखती है और इस प्रकार रंजन होता है।

संकीर्ण राग :—शुद्ध व छायालग रागों के मिश्रण से संकीर्ण राग की उत्पत्ति होती है। जिस प्रकार छायालग राग में अन्य राग की छाया दीखती है उसी प्रकार संकीर्ण राग में अनेक रागों की छाया दीखती है, जैसे राग पीलू, मिश्र काफी, मिश्र खमाज आदि। अधिकतर ठुमरियों के लिये जो राग गाये जाते हैं वे संकीर्ण राग कहे जा सकते हैं। शास्त्रकारों ने संकीर्ण राग को इस प्रकार स्पष्ट किया है :—"शुद्ध छायालग मुख्यत्वेन रक्तिहेतुत्व भवति" अर्थात् शुद्ध तथा छायालग रागों के मिश्रण

से संकीर्ण रागों की उत्पत्ति होती है। यह मिश्रण जन-रंजन के लिये होता है। ऐसे रागों में विभिन्न रसों की अनुभूति होती है जिस प्रकार ठुमरी गाते समय गायक अनेक भावों को उत्पन्न करके भिन्न-भिन्न रसों की अनुभूति कराता है।

परमेल प्रवेशक राग

जैसा कि नाम से ही मालूम होता है कि जो राग एक मेल से दूसरे मेल अथवा थाट में प्रवेश करवाते हैं उन्हें परमेल प्रवेशक राग कहते हैं। यह राग ऐसे समय में गाये जाते हैं जब उनके थाट का समय समाप्त होने को होता है तथा दूसरे थाट अथवा वर्ग के रागों का समय शुरू होने को होता है। इन रागों में दूसरी विशेषता यह होती है कि इनमें दोनों वर्गों के स्वर स्पष्ट होते हैं। उदाहरण के लिये जैसे राग जयजयवन्ती है। यह राग ऐसे समय में गाया जाता है जब रात्रि के रे व ध शुद्ध स्वर वाले रागों का समय समाप्त होने को होता है तथा ग, नि स्वर कोमल वाले रागों का समय प्रारम्भ होता है। इस प्रकार राग जयजयवन्ती एक वर्ग के रागों को समाप्त करके दूसरे वर्ग के रागों में प्रवेश कराता है। दूसरी बात यह है कि राग जयजयवन्ती में रे व ध शुद्ध होने के साथ ग व नि कोमल भी प्रयोग किये जाते हैं इसलिये यह राग रे ध शुद्ध स्वरों के वर्ग के बाद ग नि कोमल स्वर वाले रागों के वर्ग के आने की सूचना देता है तथा इस राग के बाद ही काफी, आसावरी, भैरवी व तोड़ी थाटों के रागों का गाना आरम्भ हो जाता है। इसलिये जयजयवन्ती परमेल प्रवेशक राग कहलाता है।

रागों का समय

भारतीय रागों में यह विशेषता है कि उनके गाने अथवा बजाने का एक निश्चित समय है। अपने निश्चित समय पर ही प्रत्येक राग आकर्षक व मधुर प्रतीत होता है तथा अपने निश्चित समय के अलावा दूसरे समय पर राग गाने या बजाने से उसका आकर्षण कम हो जाता है। बहुत से राग ऐसे होते हैं जो किसी विशेष मौसम या ऋतु में गाये व बजाये जाते हैं। इन रागों के गाने में आकर्षण तो हर समय रहता है परन्तु इनके निश्चित मौसम में गाने से इनकी मधुरता व सुन्दरता अत्याधिक दीख पड़ती है। उदाहरण के लिये वर्षा ऋतु में मल्हारों का गायन तथा बसंत ऋतु में बसंत, बहार आदि को गाने व बजाने में विशेष आनन्द आता है।

हिन्दुस्तानी संगीत में रागों का समय निर्धारित करने के लिये तीन मुख्य नियम हैं:—

(१) पूर्वराग व उत्तर राग का नियम।

(२) संधि प्रकाश व उसके बाद गाये जाने वाले रागों का नियम।

(३) अन्यवर्दशक स्वर का नियम।

पूर्वराग व उत्तरराग:—शास्त्रकारों ने सप्तक के ७ स्वरों को दो विभागों में बांट दिया है। पहला सा से म तक यानी सा रे ग म व दूसरा प से सां तक यानी प ध नि सां। इन्हीं दो विभागों को सप्तक का पूर्वांग और उत्तरांग कहते हैं।

इसी प्रकार दिन और रात के २४ घंटों को भी दो विभागों में बांट दिया गया है। पहला भाग अर्थात पूर्वांग १२ बजे दिन से

बजे रात तक होता है तथा दूसरा भाग अर्थात उत्तरांग १२ बजे रात से दूसरे दिन के १२ बजे दिन तक होता है।

अब जिन रागों के वादी स्वर सप्तक के पूर्वांग में यानी 'सा रे ग म' स्वरों में होते हैं वे **पूर्वांग वादी-राग अथवा पूर्वराग** कहलाते है। इन रागों के गाने का समय भी १२ बजे दिन से १२ बजे रात तक होता है। उदाहरण के लिये जैसे राग खमाज का वादी स्वर गंधार है, इसलिये यह पूर्वराग है और १२ बजे दिन से १२ बजे रात के अन्दर ही अर्थात रात्रि के दूसरे प्रहर में गाया व बजाया जाता है।

जिन रागों के वादी स्वर सप्तक के उत्तरांग यानी 'प ध नि सां' स्वरों में होते हैं वे **उत्तांग-वादी अथवा उत्तर राग** कहलाते हैं। इन रागों के गाने का समय भी १२ बजे रात से दूसरे दिन के १२ बजे दोपहर तक होता है। उदाहरण के लिये जैसे राग भैरव में धैवत स्वर वादी है इसलिये यह उत्तरांग-वादी या उत्तर राग है तथा इसे १२ बजे रात से दूसरे दिन के १२ बजे (दिन) तक ही गाया व बजाया जाता है।

परन्तु हिंदुस्तानी रागों को देखते हुये कुछ राग इस नियम का उलंघन करते हैं। इन रागों के वादी स्वर तो पूर्वांग में है परन्तु इनके गाने का समय उत्तरांग में है जैसे राग भैरवी, ललित आदि। राग भैरवी में मध्यम वादी स्वर है इस दृष्टि से यह राग पूर्वराग हुआ और इसे १२ बजे दिन से १२ बजे रात तक गाना चाहिये। परन्तु भैरवी सुबह गाई जाती है। इसी प्रकार कुछ रागों में वादी स्वर तो उत्तरांग में है परन्तु उनके गाने का समय पूर्वांग में है जैसे राग हमीर छायानट आदि। इन रागों में वादी स्वर उत्तरांग में होते हुये भी ये पूर्वांग यानी

१२ बजे दिन से १२ बजे रात के अन्दर ही गाये जाते हैं। इन अपवादों को देखते हुए विद्वानों ने पूर्वांग और उत्तरांग की सीमा बढ़ा दी है। सप्तक में पूर्वांग को सा से प तक यानी 'सा रे ग म प' और उत्तरांग को म से सा तक यानी 'म प ध नि सां' इस प्रकार कर दिया है। इस तरह अब म व प स्वर दोनों में आ जाते हैं। जिन रागों मे म या प स्वरों में कोई वादी स्वर होता है उनका समय पूर्वांग तथा उत्तरांग दोनों में हो सकता है।

संधिप्रकाश तथा उसके बाद के राग

भारतीय रागों का समय निश्चित करने के लिये दूसरा नियम संधिप्रकाश व उसके बाद गाये जाने वाले रागों का है। इस नियम के अनुसार राग का समय निर्धारित करने के लिये तीन भाग किये जाते हैं :—

(स) रे, ध स्वर कोमल वाले राग (संधिप्रकाश राग)।

(रे) रे, ध स्वर शुद्ध वाले राग।

(ग) ग, नि स्वर कोमल वाले राग।

रे, ध स्वर कोमल वाले राग (संधिप्रकाश)—जो राग दिन और रात की संधि वेला पर गाये व बजाये जाते हैं उन्हें संधिप्रकाश राग कह कर पुकारा जाता है। दिन व रात की संधि २४ घंटों में दो बार होती है एक सुबह तथा दूसरी शाम को। संधिप्रकाश समय विद्वानों ने ४ बजे से ७ बजे तक का माना है अर्थात् सुबह ४ बजे से ७ बजे तक तथा शाम को ४ बजे से ७ बजे तक संधिप्रकाश समय माना जाता है। सुबह व शाम को ऐसे समय में गाये व बजाये जाने वाले राग ही संधि-प्रकाश राग कहलाते हैं।

संधिप्रकाश रागों में एक विशेषता यह देखी जाती है कि उनमें रे व ध स्वर कोमल लगते हैं। यह विशेषता भी बहुत महत्वपूर्ण है जैसे राग भैरव, कालिंगड़ा, पूर्वी आदि। इसके साथ ही इन रागों में गंधार स्वर शुद्ध होता है। कुछ राग ऐसे भी हैं जिनमें केवल रे कोमल है और ध शुद्ध है परन्तु वे संधिप्रकाश राग कहे जाते हैं जैसे मारवा। इसलिये यह भी कहा जा सकता है कि संधिप्रकाश रागों में रे अवश्य कोमल होना चाहिये तथा ग शुद्ध होना चाहिये, ध कोमल हो या शुद्ध।

रे, ध शुद्ध स्वर वाले राग :— (संधिप्रकाश रागों के बाद के राग) जिन रागों में रे, ध स्वर शुद्ध लगते हैं वे संधिप्रकाश रागों के बाद गाये व बजाये जाते हैं। इन रागों के गाने का समय ७ बजे से १० बजे तक का माना जाता है जो संधिप्रकाश समय के बाद होता है। २४ घंटों में यह समय दो बार आता है। इस वर्ग के रागों में एक विशेषता यह है कि रे, ध शुद्ध होने के साथ गन्धार स्वर को भी शुद्ध होना चाहिये अधिकतर कल्याण, खमाज व बिलावल थाट के राग इस वर्ग के अन्तरगत आते हैं। कुछ लोगों का कहना है कि इस वर्ग के रागों का समय ७ बजे से १२ बजे तक मानना चाहिये। क्योंकि बहुत से ऐसे राग इस वर्ग के हैं जो १० बजे के बाद तक गाये व बजाये जाते हैं। परन्तु इसके साथ ही आगे आने वाले वर्ग के रागों का ध्यान रखना भी आवश्यक है। यदि रे, ध शुद्ध स्वरों के रागों का समय १२ बजे तक मान लिया जाय तो आगे आने वाले वर्ग के रागों का समय बहुत गड़बड़ हो जावेगा। इसलिये यदि इस वर्ग के रागों का समय १० बजे तक का ही रक्खा जाय तो उचित होगा। वैसे तो इस समय के नियम का कोई निश्चित पालन नहीं होता है तथा एक वर्ग के रागों का समय समाप्त होने के पहले ही दूसरे वर्ग के राग शुरू हो जाते हैं या एक वर्ग के

रागों के समय के उपरान्त भी उस वर्ग के रागों को गाया व बजाया जाता है।

ग, नि कोमल स्वर वाले रागः—रे, ध स्वर शुद्ध लगने वाले रागों के वर्ग के बाद ग, नि कोमल स्वर लगने वाले रागों का वर्ग आता है। इस वर्ग के रागों को रे, ध शुद्ध स्वरों के वर्ग के बाद गाते व बजाते हैं। अर्थात इस वर्ग के रागों को १० बजे से ४ बजे तक गाया व बजाया जाता है। यह समय भी दिन व रात को मिला कर दो बार आता है। इस वर्ग के रागों में गन्धार स्वर का कोमल होना आवश्यक है तथा निषाद कोमल हो या शुद्ध। काफी, आसावरी, भैरवी व तोड़ी थाटों के राग इस वर्ग के अन्तरगत आते हैं।

दूसरे मत के अनुसार इस वर्ग के रागों के गाने का समय १२ बजे से ४ बजे तक का है क्योंकि यदि रे, ध स्वर शुद्ध वाले राग ७ बजे से १२ बजे तक गाये व बजाये जावेंगे तो इस वर्ग के राग उनके बाद १२ बजे से ४ बजे तक गाये व बजाये जावेंगे। परन्तु यह मत उचित नहीं माना जा सकता। कारण यह है कि भैरवी, तोड़ी व आसावरी थाट के रागो का समय १२ बजे के बाद का नहीं हो सकता है। यदि भैरवी, आसावरी, तोड़ी,,देशी आदि राग दिन में १२ बजे के बाद गाये जाये तो अनुचित मालूम पड़ता है। इन नियमों का उलंघन होता रहता है। एक वर्ग के रागों को दूसरे वर्गों के रागों के समय में गाया व बजाया जाता है जैसे राग भैरवी सुबह से ही गाई व बजाई जाने लगती है। भैरवी के लिये कहा भी गया है "प्रथम प्रहर की रानी"। यदि इस वर्ग के नियम के साथ भैरवी को रक्खा जाय तो वह सुबह प्रथम प्रहर में नहीं गाई जा सकती

है। इसी प्रकार अनेक राग नियम को तोड़ते हुये गाये व बजाये जाते हैं।

अध्वदर्शक स्वर

हिन्दुस्तानी रागों का समय निर्धारण में अध्वदर्शक स्वर महत्वपूर्ण कार्य करता है। मध्यम स्वर को अध्वदर्शक स्वर कहते हैं। यह स्वर अपने दोनों रूपों के अनुसार सारे रागों को दो विभागों में बाँट देता है जैसे राग भैरव में रे, ध स्वर कोमल लगते हैं तथा मध्यम शुद्ध लगता है। इस राग में यदि मध्यम शुद्ध के स्थान पर तीव्र लगा दिया जाय तो राग पूर्वी हो जाता है। कहने का तात्पर्य यह हुआ कि शुद्ध मध्यम दिन को सूचित करता है तथा तीव्र मध्यम रात्रि को।

यदि मध्यम स्वर की दृष्टि से देखा जाय तो वे संधिप्रकाश राग जिनमें मध्यम शुद्ध होता है सुबह गाये जाते हैं तथा जिनमें मध्यम तीव्र होता है शाम को गाये जाते हैं। इसी प्रकार रे, ध स्वर शुद्ध वाले वर्ग तथा ग, नि स्वर कोमल वाले वर्ग के रागों में जिन रागों में मध्यम शुद्ध होता है वे दिन में गाये जाते हैं तथा जिन रागों में मध्यम तीव्र होता है वे रात्रि में गाये जाते हैं। यहाँ पर यदि शुद्ध मध्यम व तीव्र मध्यम का रूप-परिवर्तन देखा जाय तो बड़ा ही रुचिपूर्ण विषय हो सकता है।

किस प्रकार शुद्ध मध्यम के साथ दिन का संकेत आता है? यह जानने के लिये बसंत, परज आदि रागों को देखिये जिनमें दोनों मध्यमों का प्रयोग किया जाता है। इन रागों में तीव्र मध्यम का प्रयोग अधिक होता है परन्तु शुद्ध मध्यम के प्रयोग से सुबह होने की ओर संकेत होता है। बसंत, परज आदि संधिप्रकाश रागों के बाद ललित, रामकली आदि राग आते हैं। इन रागों

में भी दोनों मध्यम लगते हैं; परन्तु जैसे ही सुबह होने के साथ दिन चढ़ता है वैसे ही तीव्र मध्यम के स्थान पर शुद्ध मध्यम का महत्व हो जाता है। ललित, रामकली आदि रागों में शुद्ध मध्यम का अधिक महत्व रहता है। बाद में जैसे ही दिन चढ़ता जाता है वैसे ही तीव्र मध्यम कम और शुद्ध मध्यम प्रबल होता जाता है। शाम तक शुद्ध मध्यम को प्रधानता रहती है। परन्तु शाम की संधिप्रकाश वेला में फिर तीव्र मध्यम का भास होने लगता है, जो रात्रि आने का संकेत करता है। पूर्वी राग में दोनों मध्यम लगते हैं, लेकिन बाद में तीव्र मध्यम की प्रधानता बढ़ती जाती है, जैसे पूरियाधनाश्री, श्री, मुलतानी, यमन इत्यादि।

यह नियम भी देखने पर पूर्ण नहीं कहा जा सकता क्योंकि इसमें भी अनेक राग अपवाद स्वरूप आते हैं। संधिप्रकाश रागों में तो इस नियम का रूप स्पष्ट दिखलाई पड़ता है परन्तु आगे जाकर इसकी स्पष्टता नष्ट हो जाती है। रे, ध शुद्ध वाले रात्रिगेय रागों में मध्यम तीव्र का लगभग लोप सा हो जाता है। रे, ध शुद्ध के बाद ग, नि कोमल वाले वर्ग के रागों में इस नियम का पालन नहीं होता। कुछ लोगों का यह विचार है कि इस नियम से राग के समय का निर्धारण किया जा सकता है। परन्तु मेरी समझ से यह नियम स्थिर नहीं कहा जा सकता है।

गायकों के गुण तथा अवगुण

हमारे प्राचीन संगीत ग्रन्थकारों ने गायकों के गुणों और अवगुणों का वर्णन भली प्रकार से किया है। अतएव गायक के लिये यह आवश्यक है कि वह गुणों को ग्रहण करे तथा अवगुणों का त्याग करे। शारंगदेव के 'संगीत रत्नाकर' नामक ग्रन्थ में इन गुणों व अवगुणों का बहुत

विस्त्रित वर्णन मिलता है। लिखने को तो अनेक गुण तथा अवगुण लिखे जा सकते हैं परन्तु मुख्य-मुख्य गुण जो एक अच्छे गायक में होना आवश्यक है इस प्रकार हैं :—

(१) स्वरों व श्रुतियों का उत्तम ज्ञान।

(२) रागों का विस्त्रित तथा पूर्ण ज्ञान। एक राग को गाते समय दूसरे रागों से किस प्रकार बचाना चाहिये तथा किस प्रकार राग में अन्य रागों के आविर्भाव-तिरोभाव करना चाहिये।

(३) ताल और लय का उत्तम ज्ञान। गायन में ताल व लय का स्थान बड़े महत्व का है इसलिये प्रतेक गायक को ताल तथा विभिन्न लयों का अभ्यास होना चाहिये।

(४) गायक को गीत के शब्दों का शुद्ध उच्चारण करना चाहिये।

(५) मन्द्र, मध्य व तार इन तीनों सप्तकों में गाने का अभ्यास।

(६) राग की रंजकता का ध्यान रखते हुये गाना।

(७) राग के विस्तार करने के लिये गायक को तान, आलाप, बोलतान तथा अलंकारों आदि का अच्छा अभ्यास होना चाहिये।

(८) गायक को मधुर व सरस कंठ से गाना चाहिये।

(९) गायक को स्वाधीन तथा खुले कंठ से गाना चाहिये।

(१०) गायक को निडर होकर गाना चाहिये।

(११) राग के रस का ध्यान गायक को रखना चाहिये।

(१२) गाने का समय तथा श्रोताओं का ध्यान रख कर गाना चाहिये। अर्थात यह देखना चाहिये कि श्रोता किस प्रकार का गायन पसन्द करेंगे। ऐसा ध्यान गाने के समय आवश्यक है।

(१३) गाते समय गायक के गले आदि पर महनत नहीं पड़ना चाहिये और न मुद्रा ही भंग होनी चाहिये।

इन गुणों का समावेश जिस गायक में होगा वह निश्चय ही उत्तम गायक माना जाता है। नीचे गायकों के मुख्य अवगुण दिये जाते हैं :—

(१) बेसुरा गाना अर्थात् गाने में स्वर तथा श्रुति अपने उचित स्थान पर न लगना।

(२) बेताला तथा बेलय गाना।

(३) नाक के स्वर से गाना।

(४) दाँतों को पीसते हुये गाना।

(५) चिल्लाते हुये गाना।

(६) डर तथा भय के साथ गाना।

(७) कांपते हुये गाना। अर्थात गाने में आवाज का कंपना।

(८) मुह बनाकर अथवा टेढ़ी गरदन करके गाना।

(९) गाते समय हाथ पैर चलाना तथा मुद्रायें बनाना।

(१०) कर्कश आवाज से गाना।

(११) रस का ध्यान न रख कर अर्थात नीरस गाना।

(१२) राग की शुद्धता का ध्यान न रखते हुये गाना।

(१३) लापरवाही से गाना।

(१४) समय तथा श्रोताओं का ध्यान न रखते हुये गाना।

(१५) गीत के शब्दों का गलत उच्चरण करते हुये गाना अर्थात गीत के बोल श्रोताओं की समझ में नहीं आना।

— —

चतुर्थ-अध्याय

गायन-शैलियाँ (निबद्धगान)

जैसा कि बतलाया जा चुका है कि जो संगीत विभिन्न देशों में जनता की अभिरुचि पर निभर रहता है तथा जिसका मुख्य कार्य जन-मन-रंजन है, देशी संगीत कहलाता है। इसी संगीत को गान भी कहते हैं। गान के दो भेद हैं। एक तो निबद्धगान जो ताल के साथ गया व बजाया जाता है तथा दूसरा अनिबद्ध—गान जो ताल रहित होता है अर्थात् जिसका विस्तार ताल से स्वछंद होता है। अनिबद्ध गान को प्राचीन काल में कई प्रकार से गाते थे जैसे :–रागालाप, आलाप्तिगान, रूपकालाप्ति इत्यादि। इनमें से गायन के पहिले जो रागालाप होते हैं वह आज भी अनिबद्धगान का एक प्रकार प्रचलित है।

प्राचीन काल में निबद्धगान में प्रबन्ध, वस्तु, रूपक आदि गीतों का प्रचार था। आजकल जिस प्रकार ध्रुपद, धमार, ख्याल आदि निबद्धगान के अन्तरगत आते हैं उसी प्रकार प्राचीन काल में ऊपर लिखे गीत प्रचलित थे। जैसे आजकल ध्रुपद के विभिन्न अंग-अस्थाई, अन्तरा, संचारी, आभोग नामों से पुकारे जाते हैं उसी तरह प्राचीन प्रबन्धों के विभिन्न विभागों को धातु कहते थे। इन धातुओं के नाम ये थे—उद्ग्राह, मेलापक ध्रुव, अन्तरा व अभोग। परन्तु आधुनिक संगीत में निबद्धगान के अन्तरगत जो गीत आते हैं वे इस प्रकार हैं:—ध्रुपद, धमार, ख्याल, टप्पा, ठुमरी, होरी, सरगम, लक्षणगीत, चतुरंग, गजल,

भजन, तराना तथा रागमाला। इन गीतों की व्याख्या नीचे दी जाती है:—

ध्रुपद

ध्रुपद भारतवर्ष का एक प्राचीन गायन है। इसके अविष्कार के विषय में अभी लोगों में मतभेद है। कुछ लोगों का कहना है कि इस गीत का अविष्कार १५ वीं शताब्दि में ग्वालियर के राजा मानतोमर ने किया। कुछ लोगों का विचार है कि ध्रुपद गायन १५ वी शताब्दी के पहिले भी इस देश में खूब प्रचलित था। यह ठीक भी है कि अकबर के दरबार में अनेक गायक उच्च ध्रुपद गायन गाते थे तथा स्वामी हरिदास जो तानसेन के गुरू थे ध्रुपद ही गाते थे। इन लोगों के विचार से ध्रुपद गायन का अविष्कार १३ वी शताब्दि में हुआ। कुछ भी हो यह तो मानना पड़ेगा कि ध्रुपद गायन भारतवर्ष में ५०० वर्षों से गाया जा रहा है।

ध्रुपद गायन में गम्भीरता अधिक होती है तथा भाषा भी उच्च कोटि की होती है। इस गीत के चार विभाग होते हैं जो स्थाई, अन्तरा संचारी और आभोग कहलाते हैं। इसमें चार-ताल सूलताल, तोवरा तथा ब्रह्म आदि तालों को बजाने का प्रचार है। अधिकतर ध्रुपद गायन में पखावज की संगत होती है। ध्रुपद गायन की भाषा अधिकतर हिन्दी अथवा ब्रजभाषा होती है तथा वीर, शांत और शृंगार रस को प्रधानता होती है। गीत के पहले नोंम, तोंम में देर तक आलापचारी होती है। इस गायन में खटके, मुर्की आदि का प्रयोग नहीं होता है परन्तु मींड, गमक, कण आदि की शोभा होती है। लयकारियों का सुन्दर रूप देखने को मिलता है। दूने, तिगुन, चौगुन, अठगुन,

आड आदि लयों का चमत्कार दिखलाई पड़ता है। कभी कभी विभिन्न लयों में बोलतानों का प्रयोग भी करते हैं। कुछ लोगों का विचार है कि प्राचीन ध्रुपदों में लयकारियों का प्रयोग नहीं होता था। परन्तु आधुनिक काल में लयकारियाँ जैसे सम, विसम अनाघात आदि से ही ध्रुपद गायन की शोभा बढ़ाई जाती है।

ध्रुपद गायकों को कलावंत की संज्ञा दी गई है। इन कलावंतों की विभिन्न शैलियाँ थी जिन्हें वाणियाँ कहते थे वे इस प्रकार थीं—खंडार, नौहार, डागुर और गौबरहार। शारंग-देव के समय में (१३ वी शताब्दि) इन विभिन्न शैलियों को गीतियों के नाम से पुकारते थे जो पांच थी—शुद्धा, भिन्ना, बेसरा, गौड़ी और साधारणी।

धमार

धमार एक ताल होता है। इस ताल में जो गीत गाया जाता है उसे धमार कहते हैं। अधिकतर इस गीत में होली सम्बन्धी शब्द होते हैं क्योंकि इस गीत में राधाकृष्ण अथवा कृष्ण व गोपियों के फागुन माह की लीलाओं का वर्णन होता है। इस गीत के गायक अधिकतर ध्रुपद गायक ही होते हैं। साधारणतः इस गीत को गाना कठिन होता है। इस गायन में दून, तिगुन, चौगुन, अठगुन, आड़ आदि विभिन्न लयों का चमत्कार ध्रुपद की तरह होता है। कभी कभी बोल-तानों का भी प्रयोग किया जाता है। ध्रुपद वास्तव में धमार से अधिक गम्भीर होता है। धमार की भाषा भी ध्रुपद की भाषा की तरह उच्च होती है। इस गीत में अधिकतर शृंगार रस प्रधान होता है।

Sangeet Natak Akademi Digital Library

होली

ख्याल गायक जब होली को विभिन्न तालों में गाते हैं तब वह गीत होली कहलाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि होली नामक गीत तथा धमार में केवल तालों का अन्तर है। जिस होली संबन्धी गीत में धमार ताल प्रयोग में लाया जाता है वह तो धमार गीत कहलाता है और जिस होली सबन्धी पद को ख्यालिये दीपचंदी, त्रिताल आदि तालों में गाते हैं उसे होली कहा जाता है। अधिकतर होली में ख्यालिये तान, आलाप, पल्टे आदि सब प्रयोग करते हैं। वास्तव में होली के अन्तरगत ही धमार भी आ जाता है।

ख्याल

ख्याल शब्द फारसी भाषा का है जिसका अर्थ कल्पना अथवा विचार होता है। साधारण तौर पर रागों के नियमों का पालन करते हुये गाने वाला जब अपनी कल्पना से तथा अभ्यास से आलाप, तानों व ताल से सजा कर जो गीत गाता है, उसे ख्याल कहते हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि ख्याल गायन की वह शैली है जिसमें गायक एक गीत को विभिन्न तान, आलाप, ताल, पल्टों, व अलंकारों से सजाकर एक नया मनोहर रुप प्रदान करता है। ख्याल दो प्रकार के होते हैं:—

बड़ा ख्याल

कहते हैं कि इस गीत का अविष्कार १५ वीं शताब्दि में जौनपुर के बादशाह सुलतान हुसैन शर्की ने किया था। सदारंग और अदारंग दो भाई जो मुहम्मदशाह रंगीले के दरबार में थे इस

क्षेत्र में बहुत प्रसिद्ध है। इन्होंने हजारों ख्याल बना कर सिखलाये पर वे लोग स्वयं ख्याल नहीं गाते थे। क्योंकि पुराने समय में ख्याल गायन कोई उच्च नहीं समझा जाता था। उस समय ध्रुपद गायन श्रेष्ट था। ग्वालियर के हद्दू हस्सू व नत्थू खाँ भी इस क्षेत्र में प्रसिद्ध हैं।

यह गायन विलंबित लय में होता है। इसके स्थाई और अन्तरा ऐसे दो भाग होते हैं। इस गायन की प्रकृति गंभीर होती है पर ध्रुपद के समान नहीं होती। मुर्की, मींड, तान, पल्टे बोलतान, बहलावे आदि का प्रयोग इस गायकी में सुन्दरता प्रदान करता है। पहिले बराबर की तान लेते हैं फिर दून, चौगुन और अठगुन की ताने लेते हैं। विभिन्न प्रकार की ताने इस गायकी में सुनने को मिलती हैं जैसे—सपाटतान, कूटतान, छूट की तान, गमक की तान, अलंकारिक तान, फिरत की तान, इत्यादि। इस गायकी के गीतों में अधिकतर कृष्ण लीलाओं का वर्णन, उत्सव-प्रसंग, ऋतु-वर्णन, सृष्टिसौंदर्य, अथवा शृंगारिक वर्णन होता है। इस गायकी में शृंगार रस, शांत रस व करुण रस प्रधान होते हैं। अधिकतर इस गीत में एकताल झूमरा, तिलवाड़ा, आड़ाचौताल, धोमा त्रिताल आदि विलंबित तालों का प्रयोग होता है। प्राचीन काल में जिस प्रकार ध्रुपद गायन का प्रचार था उसी प्रकार आधुनिक काल में ख्याल गायन बहुत लोकप्रिय हो गया है।

कव्वाली ख्याल अथवा छोटा ख्याल

इस गीत की उत्पत्ति १४ वीं शताब्दि में अमीर खुसरू द्वारा मानी जाती है। इसीलिये कव्वाल लोग अपना सम्बन्ध अमीर खुसरु से लगाते हैं। इस गीत की रचना भी संक्षिप्त होती है

और स्थाई व अन्तरा ऐसे दो भाग होते हैं। इसके गीतों में शृंगार तथा शन्ति रस प्रधान होते हैं। यह तीनताल, एकताल, झपताल, आदि में गाये जाते हैं। इन गीतों की लय मध्यम होती है तथा कभी कभी द्रुत भी होती है। सदारंग व अदारंग इस क्षेत्र में भी प्रसिद्ध हैं। इस गायकी में मींड, मुर्की, बहलावे, बोलतान, बोलआलाप, तान, पल्टा आदि प्रयोग किये जाते हैं जिससे गायकी निखर उठती है। आधुनिक काल में दोनों प्रकार के ख्यालों का प्रचार हो रहा है तथा लोकप्रियता बढ़ रही है।

टप्पा

टप्पा गायन का अविष्कार लखनऊ के सुप्रसिद्ध कव्वाल गुलाम नबी शौरी ने किया था। टप्पा एक पंजाबी शब्द है। इस गीत की भाषा पंजाबी होती है तथा गति चपल होती है। इसकी गायकी ख्याल व ध्रुपद से बिल्कुल भिन्न होती है। इसमें कंपन मुर्की, मींड, तान आदि का प्रयोग सुन्दरता प्रदान करता है। इसकी ताने पेचदार तथा चपल होती हैं और उनमें रुकाव नहीं होता। टप्पा गायन संक्षिप्त होता है तथा गीत के स्थाई व अन्तरा ऐसे दो भाग होते हैं। इसमें प्रधान रस शृंगार होता है। अधिकतर चुड़ प्रकृति के रागों जैसे – काफी, भैरवी, खमाज, पीलू, झिंझोटी आदि में गया जाता है। इसमें प्रयुक्त होने के लिये एक खास ताल होता है जिसे टप्पा ताल कहते हैं। इस गीत का प्रचार पंजाब में बहुत है। इस गायन में गले की तैयारी बहुत आवश्यक है मुर्की व ताने बड़े अभ्यास के उपरान्त ही गले से निकल सकती हैं। खास कर ध्रुपद या ख्याल गाने वालों को इस गायकी में अड़चन होती है परन्तु आधुनिक काल में गायक लोग प्रत्येक गायन शैली को गाते हैं।

www.cabeed.com

ठुमरी

ठुमरी गायन के अविष्कार के विषय में अभी तक कुछ ठीक नहीं हो सका है। परन्तु कुछ विद्वानों का विचार है कि इसका आविष्कार लखनऊ में हुआ। संयुक्त प्रान्त में इस गायन का प्रचार अधिक है। यह गायन अत्यन्त मधुर तथा रसीला है इसका प्रचार लखनऊ के नवाबों के दरबार में खूब हुआ। ठुमरी में स्थाई और अन्तरा ऐसे दो भाग होते हैं। इसमें मुर्कियाँ खटके, छोटी छोटी तानें, बोलतानें, बोल आलाप सुन्दरता प्रदान करते हैं। ठुमरी में राग की शुद्धता पर अधिक ध्यान नहीं दिया जाता। इसी लिये इसकी प्रकृति क्षुद्र मानी जाती है। अधिक तर ठुमरी खमाज, काफी, पीलू, झिंझोटी, तिलंग आदि क्षुद्र प्रकृति के रागों में गाई जाती है। गायक जानबूझ कर भिन्न २ रागों का मिश्रण करके अपने गायन को मधुर बनाता है। ठुमरी के लिये पंजाबी और दीपचंदी ताल होते हैं परन्तु तीन-ताल में भी ठुमरियाँ गाई जाती हैं। चंचलता, लालित्व तथा श्रंगार प्रधान होने के कारण छोटी छोटी ताने अधिक शोभा देती हैं। बोल व बोलतानों का मधुर्य मन को हरने वाला होता है। कुल तीन प्रकार की ठुमरियाँ सुनने में आती हैं (१) लखनऊ की ठुमरी (२) बनारसी ठुमरी (३) पंजाबी ठुमरी। पंजाबी ठुमरी में टप्पा का अंग देखने को मिलता है। ठुमरी के गीत में अधिकतर राधाकृष्ण की प्रम लीलाओं का वर्णन, विरह का वर्णन आदि होता है। ठुमरी भाव प्रधान होती हैं। यह गायकी आजकल काफी प्रचलित है तथा मनोरंजन भी खूब होता है। साधारण श्रोता भी ठुमरी गायन को पसन्द करते हैं।

तराना :—तराना भी एक प्रकार का गायन है। इसमें गीत के स्थान पर ओदानो, दीम तन नन, ताना दिर दिर आदि शब्दों का प्रयोग करते हैं। कभी कभी सरगम, तबला व मृदंग के बोलों का भी प्रयोग इसमें होता है। अधिकतर तीनताल या एक ताल में तराने गाये जाते हैं। तरानों को लय द्रुत होती है। लय का इस गायन में बहुत महत्व होता है द्रुतलय में बोलों को कहने के लिये अभ्यास की आवश्यकता पड़ती है। इसमें स्थाई व अन्तरा दो भाग होते हैं। तराने के बोल अर्थ हीन होते हैं इसमें शब्दों की प्रधानता न होने के कारण स्वर तथा लय को प्रधानता प्राप्त हैं। ख्याल गायन के बाद द्रुत लय में तराना गायन बहुत आनन्द देता है। इस गायन म तानों का प्रयोग भी होता है। बहादुर हुसेन खाँ, तानरस खाँ व नत्थू खाँ के तराने प्रसिद्ध हैं।

लक्षणगीत—जिस गीत में राग के लक्षणों का वर्णन होता है उसे राग का लक्षणगीत कहते है। लक्षणगीत की रचना छोटे ख्याल की तरह होती हैं और जिन तालों में मध्यलय के ख्याल गाये जाते हैं उन्ही में लक्षणगीत भी गाये जाते हैं। इस गीत में राग में लगने वाले स्वर, राग के वादी-सम्वादी स्वर, राग का समय, राग की जाति आदि सब बातों का वर्णन होता है। इस गीत में स्थाई और अन्तरा ऐसे दो भाग होते हैं। राग को सीखने के पहिले उसका लक्षण गीत सिखाते हैं जिससे राग की जानकारी प्राप्त हो जाती है।

तिरवट—त्रिवट या तिरवट एक प्रकार का गीत होता है जिसमें अधिकतर मृदंग व पखावज के बोल होते हैं। कभी कभी इसमें तराने की तरह बेकार शब्द होते हैं। चतुरंग में त्रिवट का एक अंग होता है वास्तव में यह गीत कुछ कठिन

होता है, इसलिये इसका प्रचार बहुत कम होता जा रहा है। इसलिये इसे कभी गाते हुये दिखलाई पड़ते हैं। इसे अधिकतर जल्द लय में तराने की तरह ही गाते हैं, इसलिये गाने के लिये इसे तैयार करने की विशेष आवश्यकता पड़ती है। अधिकतर त्रिताल, एकताल आदि छोटे ख्याल के तालों में इसे गाया जाता है।

सरगम—किसी राग के स्वरों की मधुर रचना, जो किसी ताल में बंधी होती है, सरगम कहलाती है। सरगम को भिन्न २ तालों में गाते हैं, जैसे त्रिताल, झपताल, एकताल इत्यादि। इस गीत में दो भाग होते हैं जो स्थाई और अन्तरा कहलाते हैं। राग को सीखने के पहिले उसकी सरगम अवश्य सीखना चाहिए। इस से राग में लगने वाले स्वरों का ज्ञान होता है। सरगम को स्वर-मालिका या सुरावर्त आदि नामों से पुकारा जाता है।

चतुरंग—जैसा कि नाम से ही प्रतीत होता है इस गीत के चार अंग होते हैं।

(१) गीत के बोल (२) तराने के बोल (३) सरगम (४) तबला या मृदंग के बोल (त्रिवट)।

इस गीत को द्रुत लय में छोटे ख्याल की तरह गाते हैं। यह एक आधुनिक गायन कहलाता है क्योंकि प्राचीन काल में इसका प्रचार नहीं था। इसमें तानों का प्रयोग होता है। ख्याल गायक ही इसे गाते हैं।

ग़जल—इस गीत की रचना उर्दू, फ़ारसी भाषाओं में होती है। यह गीत ख्याल, ध्रुपद आदि की तरह उच्च नहीं माना जाता है। जिन रागों में ठुमरी, टप्पा आदि गाते हैं उन्हीं में इसे भी गाते हैं। इस गायन का प्रधान रस शृंगार होता है। अधिकतर

पचंदी, पश्तु, तीवरा आदि तालों में गाया जाता है। इस गीत में कई अन्तरे होते हैं। शब्द रचना उर्दू या फारसी में होते हुये भी उच्च होता है, इसलिये इसे शब्द प्रधान ही कहा जा सकता है राग प्रधान नहीं।

रागमाला—गायन का यह प्रकार बहुत ही सुन्दर तथा सौंदर्यपूर्ण होता है। इस गीत की विशेषता यह होती है कि कई रागों के नाम इस गीत के शब्दों में आ जाते हैं। राग के नामों के साथ ही गीत की रचना उसी राग में होने लगती है, अर्थात् जैसे ही राग का नाम लिया जाता है वैसे ही उसी राग के स्वरों में गीत की रचना होने लगती है। इस प्रकार एक के बाद एक करके कई रागों की एक माला सी तैयार हो जाती है। इस गायन को अधिकतर ख्यालिये ही गाते हैं और इसकी गायकी भी छोटे ख्याल की तरह होती है। इस गीत को गाने के लिये रागों पर अच्छे अभ्यास की आवश्यकता होती है, क्योंकि थोड़ी थोड़ी देर में तानों व आलापों से ही रागों को बदलना पड़ता है। इस गीत को 'राग-सागर' भी कह कर पुकारते हैं।

भजन और गीत—संगीत में भजन भी एक प्रकार का गायन होता है। आजकल इसका प्रचार खूब हो रहा है। जिस प्रकार गजल शब्द प्रधान होते हैं उसी प्रकार हिन्दी में भजन होते हैं। इसमें राग की शुद्धता पर अधिक ध्यान नहीं दिया जाता तथा मुख्य उद्देश्य परमात्मा की स्तुति करना होता है। अधिकतर कहरवा, दादरा, तीवरा, रूपक, तीनताल, झपताल आदि ताल प्रयोग में लाये जाते हैं। इसके कई चरण होते हैं। इन गीतों में भक्ति रस प्रधान होता है।

परमात्मा की लीलाओं का वर्णन छोड़ कर जो गीत आज सुनने में आते हैं उन्हें 'गीत' कहकर पुकारते हैं। सुन्दर-सुन्दर

कविताओं को स्वरों व तालों में बांध कर आनन्द प्राप्ति के लिये इसका गायन होता है। आज कल रेडियो पर यह गायन बहुत सुनने को मिलता है। आधुनिक गीतों में शृंङ्गार रस प्रधान होता है। इसी को भाव-संगीत या (Light Music) भी कहते हैं।

———

Digitized from www.dbraulibrary.org

पंचम अध्याय

व्यंकटमखी के ७२ थाटों की उत्पत्ति

सत्रहवीं शताब्दि में दक्षिणी संगीत के प्रसिद्ध विद्वान पं० व्यंकटमखी ने अपनी पुस्तक "चतुर्दंडिप्रकाशिका" में गणितानुसार एक सप्तक से कुल ७२ थाटों की उत्पत्ति सिद्ध की। उन्होंने अपनी पुस्तक में यह भी सिद्ध किया कि एक थाट से रागों की जातियों के आधार पर गणितानुसार कुल ४८४ राग बन सकते हैं। दक्षिणी संगीत में आजतक ७२ थाटों का सिद्धान्त माना जाता है।

पं० व्यंकटमखी के ७२ थाटों को समझने के पहिले थाट के नीचे लिखे मुख्य लक्षणों को ध्यान में रखना आवश्यक है:—

(१) थाट में हमेशा सातों स्वर होना चाहिये।

(२) थाट के सातों स्वर क्रमानुसार होना चाहिये।

(३) थाट में केवल आरोह होता है।

(४) थाट में रंजकता का होना आवश्यक नहीं है। थाट गाया भी नहीं जाता, इस कारण थाट में एक स्वर के दो रूप आ सकते हैं।

इन नियमों को देख कर हम कह सकते हैं कि नियम नं० २ व नियम नं० ४ में आपस में विरोध हो सकता है। क्योंकि नियम नं० २ के अनुसार थाट के ७ स्वर क्रमानुसार होना चाहिये परन्तु नियम नं० ४ के अनुसार यदि सात स्वरों में किसी एक स्वर के दो रूप आ जाते हैं तो उस थाट के स्वर क्रमानुसार नहीं

हो सकते। उदाहरण के लिये सा रे॒ रे म प ध नि इस थाट में 'रे' स्वर के दो रूप आने के कारण सातों स्वर क्रमानुसार नहीं हैं, क्योंकि 'ग' वर्जित है। इस प्रकार हमने देखा कि जब स्वर के दो रूप आ जाते हैं तो सात स्वरों में क्रम भंग हो जाता है।

परन्तु यह कठिनाई दक्षिणी पद्धति के स्वरों के साथ उत्पन्न नहीं होती क्योंकि दक्षिणी पद्धति के स्वरों में कुछ स्वरों के दो दो रूप हैं जिससे क्रम भंग नहीं होने पाता। अतएव पहिले हमें दक्षिणी-संगीत पद्धति के स्वरों को अच्छी तरह समझ लेना चाहिये। नीचे हम उत्तरी व दक्षिणी दोनों पद्धतियों के १२ स्वरों को देते हैं :—

हिन्दुस्तानी स्वर	पं० व्यंकटमखी के स्वर
(१) सा	'सा'
(२) रे॒ (कोमल)	शुद्ध रे
(३) रे (शुद्ध)	पंचश्रुति 'रे' या शुद्ध 'ग'
(४) ग॒ (कोमल)	षटश्रुति रे या साधारण 'ग'
(५) ग (शुद्ध)	अन्तर 'ग'
(६) म (शुद्ध)	शुद्ध 'म'
(७) म (तीव्र)	प्रति 'म' या वराली 'म'
(८) 'प'	'प'
(९) ध॒ (कोमल)	शुद्ध 'ध'
(१०) ध (शुद्ध)	पंचश्रुति ध या शुद्ध 'नि'
(११) नि॒ (कोमल)	षटश्रुति 'ध' या कैशिक 'नि'
(१२) नि (शुद्ध)	काकली 'नि'

इन स्वरों में विशेषता यह है कि इनके दो-दो रूप हैं, इसलिये यदि 'रे' स्वर के दो रूप आते हैं तो उनमें से एक शुद्ध रे होगा तथा दूसरा शुद्ध ग हो जावेगा। इस प्रकार स्वर क्रमानुसार हो सकेंगे, अर्थात स्वरों का क्रम रखने के लिये स्वर अपने दूसरे रूपों से सम्बोधित किये जाते हैं। उदाहरण के लिये:—

सा ग॒ ग म = सा, षटश्रुति रे अन्तर ग, म

अब हमको यह देखना है कि प० व्यंकटमखी ने सप्तक के १२ स्वरों से गणित द्वारा किस प्रकार ७२ थाटों की स्थापना की।

सप्तक के १२ स्वर इस प्रकार हैं:—सा रे॒ रे ग॒ ग म मप ध॒ ध नि॒ नि। सरलता के लिये इन १२ स्वरों में से मध्यम तीव्र को अलग करके और उसके लिये आखिर में तार षड्ज जोड़ देते हैं। अब १२ स्वरों का यह नया स्वर-समूह इस प्रकार होगा:—

सा रे॒ रे ग॒ ग म प ध॒ ध नि॒ नि सां।

अब इन १२ स्वरों को पूर्वार्ध तथा उत्तरार्ध ऐसे दो बराबर भागों में विभाजित करते हैं:—

सा रे॒ रे ग॒ ग म | प ध॒ ध नि॒ नि सां

इन दोनों विभागों के मिश्रण से हमको ७ स्वर वाले मेल अथवा थाट बनाना हैं। अतएव यदि हम ४ स्वर पूर्वार्ध से लेकर और ४ स्वर उत्तरार्ध से लेकर मिलायें तो ८ स्वरों का एक मेल तैयार होगा। जिसमें ८ वां स्वर तार षडज होगा। अब हमें यह देखना है कि ऊपर लिखे

Downloaded from www.vadyanidhi.org

पूर्वार्ध और उत्तराध के ६-६ स्वरों में से ४-४ स्वरों के कितने स्वर-समूह बन सकते हैं। :—

पूर्वार्ध सा रे॒ रे ग॒ ग म	उत्तरार्ध प ध॒ ध नि॒ नि सां
(१) सा रे॒ रे म	(१) प ध॒ ध सां
(२) सा रे॒ ग॒ म	(२) प ध॒ नि॒ सां
(३) सा रे॒ ग म	(३) प ध नि॒ सां
(४) सा रे ग॒ म	(४) प ध॒ नि॒ सां
(५) सा रे ग म	(५) प ध नि॒ सां
(६) सा ग॒ ग म	(६) प नि॒ नि॒ सां

अब पूर्वार्ध तथा उत्तरार्ध के स्वरों को मिलकर ७-७ स्वरों के मेल बनाना हैं। पूर्वार्ध के ६ स्वर-समूहों के प्रत्येक स्वर-समूह में उत्तराध के ६ स्वर-समूह क्रम से जोड़ देंगे और इस प्रकार कुल मेल ६×६ = ३६ बनेंगे।

यह ३६ मेल हमें शुद्ध मध्यम के सप्तक से प्राप्त हुये। यदि शुद्ध मध्यम के स्थान पर तीव्र मध्यम लगाया जाय तो इसी प्रकार ३६ मेल या थाट तीव्र मध्यम के बन सकते हैं। शुद्ध मध्यम तथा तीव्र मध्यम के कुल मिला कर अब हमें ३६+ ३६ = ७२ थाट प्राप्त हुये।

इन थाटों में से कुल ४ स्वर-समूह ऐसे हैं जिनमें एक स्वर के दो रूप आते हैं। इसलिये कठिनाई को दूर करने के लिये नीचे इन स्वर-समूहों को दक्षिणी स्वरों के हिसाब से दिया जाता है :—

(१) सा रे॒ रे म = 'सा', शुद्ध 'रे', शुद्ध 'ग' और 'म'।

(२) सा ग ग म = 'सा', षटश्रुति 'रे', अंतर 'ग', और 'म'।

(३) प ध ध सां = 'प', शुद्ध 'ध', शुद्ध 'नि' और 'सां'।

(४) प नि नि सां = 'प', षटश्रुति 'ध', काकली 'नी' और 'सां'।

हिन्दुस्तानी पद्धति से ३२ थाटों की उत्पति :—ऊपर दिये ७२ थाट व्यंकटमखी के स्वरों की विशेषता के ही कारण बन सकते हैं। परन्तु हिन्दुस्तानी पद्धति के स्वरों में यह विशेषता नहीं है, इसलिये इस पद्धति में ७२ थाट किसी प्रकार भी उत्पन्न नहीं हो सकते हैं। कारण यह है कि अपने यहाँ स्वरों के दो-दो स्वरूप नहीं हैं और स्वर क्रमानुसार करने के लिये एक स्वर के दो रूप नहीं हो सकते। हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति के सप्तक के १२ स्वरों से गणित द्वारा हमें कुल ३२ थाट प्राप्त हो सकते हैं। सप्तक के शुद्ध मध्यम के १२ स्वरों के पूर्वार्ध व उत्तरार्ध भागों में से हमें नीचे लिखे स्वर-समूह प्राप्त हो सकते हैं :—

पूर्वार्ध	उत्तरार्ध
(१) सा रे ग म	(१) प ध नि सां
(२) सा रे ग म	(२) प ध नि सां
(३) सा रे ग म	(३) प ध नि सां
(४) सा रे ग म	(४) प ध नि सां

पूर्वार्ध व उत्तरार्ध के स्वर-समूहों को मिला कर हमें कुल ४×४=१६ थाट मिलेंगे। यह १६ थाट हुये शुद्ध मध्यम के और इसी प्रकार १६ थाट तीव्र मध्यम के होंगे। सब मिला कर १६+१६=३२ थाट हिन्दुस्तानी पद्धति के स्वरों के अनुसार बन सकते हैं।

Downloaded from www.vmsarkar.org

एक थाट से ४८४ रागों की उत्पत्ति

सत्रहवीं शताब्दी में "चतुर्दंडिप्रकाशिका" नामक संगीत ग्रन्थ में पं० व्यंकटमखी ने यह भी सिद्ध किया कि एक थाट से गणितानुसार ४८४ रागों की उत्पत्ति हो सकती है। रागों की यह उत्पत्ति रागों की जातियों पर आधारित है। रागों में लगने वाले स्वरों की विभिन्न संख्याओं के कारण उनके जो अलग अलग वर्ग किये गये हैं उन्हें ही रागों की जातियाँ कहते हैं। राग में अधिक से अधिक सात स्वर लगते हैं और कम से कम पाँच। इस प्रकार कुल तीन प्रकार की मुख्य जातियाँ होती हैं (१) संपूर्ण—जिसमें ७ स्वर लगते हैं। (२) षाडव—जिसमें ६ स्वर लगते हैं। (३) औडव—जिसमें ५ स्वर लगते हैं।

यह तो हुईं मुख्य तीन जातियाँ, परन्तु राग में आरोह तथा अवरोह दोनों होते हैं और ऐसा हो सकता है कि किसी राग के आरोह में ७ स्वर लगें और अवरोह में ७ से कम लगें। इस बात का ध्यान रखते हुये इन तीन जातियों को तीन-तीन विभागों में बाँट दिया है। अर्थात कुल ९ जातियाँ होती हैं जो इस प्रकार हैं :—

(१) संपूर्ण-संपूर्ण, (२) संपूर्ण-षाडव (३) संपूर्ण-औडव (४) षाडव-संपूर्ण (५) षाडव-षाडव (६) षाडव-औडव (७) औडव-संपूर्ण (८) औडव-षाडव (९) औडव-औडव। इन जातियों का वर्णन पहिले किया जा चुका है।

अब हमको देखना चाहिये कि ऊपर लिखी ९ जातियों से अधिक से अधिक कितने राग तथा वे किस प्रकार उत्पन्न हो सकते हैं। उदाहरण के लिये हम एक शुद्ध थाट अर्थात् बिलावल को लेकर उससे उत्पन्न रागों को देखते हैं। नीचे इस थाट से,भि

भिन्न ६ जातियों के आधार पर उत्पन्न रागोंकी संख्या दी जाती है :—

(१) संपूर्ण-संपूर्ण :—इस जाति से केवल एक राग उत्पन्न होगा। क्योंकि आरोह तथा अवरोह दोनों ही संपूर्ण हैं।

(२) संपूर्ण-षाडव :—इस जाति से कुल ६ राग उत्पन्न हो सकते हैं। क्योंकि हर एक में आरोह तो संपूर्ण रहेगा परन्तु अवरोह में क्रमानुसार एक एक स्वर छोड़ते रहेंगे। केवल षडज को वर्जित नहीं करेंगे।

(३) संपूर्ण-औडव :—इस जाति से कुल १५ राग बन सकेंगे। क्योंकि हर राग का आरोह तो संपूर्ण होगा परन्तु अवरोह में हर बार दो दो स्वरों को छोड़ते रहेंगे। अवरोह में १५ बार दो-दो स्वरों की जोड़ियाँ इस प्रकार क्रमानुसार छोड़ देंगे :—(१) निध (२) निप (३) निम (४) निग (५) निरे (६) धप (७) धम (८) धग (९) धरे (१०) पम (११) पग (१२) पर (१३) मग (१४) मरे (१५) गरे।

(४) षाडव-संपूर्ण :—इस जाति से केवल ६ राग बन सकेंगे। कारण यह है कि प्रत्येक के आरोह में एक एक करके ६ स्वर छोड़ते रहेंगे परन्तु अवरोह सब का संपूर्ण होगा।

(५) षाडव-षाडव :—इस जाति से कुल राग ६×६=३६ बन सकते हैं। क्योंकि षाडव जाति के ६ आरोह तथा ६ अवरोह बन सकते हैं। इन ६ आरोह के प्रत्येक आरोह में ६ षाडव अवरोह क्रम से जोड़ देंगे और इस प्रकार कुल ६×६=३६ राग उत्पन्न होंगे।

(६) षाडव-औडव :—इस जाति से कुल ६×५=६० राग बन सकते हैं। क्योंकि ६ आरोह बनेंगे और १५ अवरोह॥

प्रत्येक आरोह में १५ औडव अवरोह जोड़ दिये जावेंगे और इस प्रकार कुल ६ × १५ = ६० राग बन सकेंगे।

(७) औडव-संपूर्ण :—इस जाति से कुल १५ × १ = १५ राग उत्पन्न हो सकते हैं। कारण यह है कि आरोह तो १५ हो सकते हैं परन्तु अवरोह संपूर्ण होने के कारण केवल एक ही रहेगा। इसलिये कुल १५ राग उत्पन्न होंगे।

(८) औडव-षाडव :—इस जाति से कुल १५ × ६ = ६० राग बन सकते हैं। क्योंकि १५ आरोह होंगे तथा ६ षाडव अवरोह बन सकते हैं। प्रत्येक औडव आरोह में ६ षाडव अवरोह जोड़ने पर कुल राग १५ × ६ = ६० उत्पन्न होंगे।

(९) औडव-औडव :—इस जाति से कुल १५ × १५ = २२५ राग बन सकते हैं। क्योंकि इस जाति के १५ औडव आरोह हो सकते हैं तथा १५ औडव अवरोह। अब प्रत्येक औडव आरोह में १५ अवरोह जोड़ दिये जावेंगे और इस प्रकार कुल मिलाकर १५ × १५ = २२५ राग उत्पन्न हो सकेंगे।

इस प्रकार बिलावल थाट से, ९ प्रकार की जातियों के कारण कुल :—

(१) संपूर्ण-संपूर्ण	=	१
(२) ,, —षाडव	=	६
(३) ,, —औडव	=	१५
(४) षाडव—संपूर्ण	=	६
(५) ,, —षाडव	=	३६
(६) ,, —औडव	=	९०
(७) औडव-संपूर्ण	=	१५
(८) ,, —षाडव	=	९०
(९) ,, —औडव	=	२२५

४८४ राग उत्पन्न होंगे।

Downloaded from www.vedicbooks.org.in

जब एक थाट से ४८४ राग उत्पन्न हो सकते हैं तो ७२ थाटों से कुल = ४८४ × ७२ = ३४८४८ राग उत्पन्न हो सकते हैं। यह संख्या केवल गणितानुसार ही हो सकती है। इन रागों के अलावा बहुत से राग ऐसे भी हैं जो केवल स्वरूप के बदलने से बन जाते हैं अथवा जो केवल वादी-सम्वादी के बदलने से बनते हैं। इस प्रकार देखने से रागों की संख्या ३४८४८ से भी अधिक सिद्ध की जा सकती है, परन्तु राग की मुख्य वस्तु 'रंजकता' को ध्यान में रखते हुये ऊपर लिखी संख्या में बहुत सारे राग 'राग' नहीं कहे जा सकते। राग की परिभाषा में भी दिया गया है कि "रंजको जन चित्तनां" इस लिये जिस राग में मधुरता नहीं है वह राग नहीं कहा जा सकता। दूसरी बात राग में म व प यह दो स्वर एक साथ वर्जित कभी नहीं हो सकते परन्तु ऊपर लिखे कई रागों में यह दो स्वर वर्जित हैं इस नियम को देखते हुये भी बहुत से राग नियम विरुद्ध हैं। वास्तव में आजकल २०० अथवा २५० से अधिक राग सुनने में नहीं आते।

स्वरों की अन्दोलन संख्या

तानपूरे अथवा सितार के तार को छेड़ने से उसमें कंपन अथवा अन्दोलन (Vibration) उत्पन्न होते हैं। तार को छेड़ने से वह दूसरी ओर तक जाता है फिर लौट कर उतनी ही दूर पीछे जाता है बाद में वह अपने पूर्व स्थान पर आ जाता है। परन्तु अपने स्थान पर आने पर वह रुकता नहीं है बल्कि इसी तरह ऊपर-नीचे होकर कंपन करता है और तब तक कंपन करता रहता है जब तक उसका वेग शान्त नहीं होता। अपने स्थान से एक ओर जाकर तथा फिर दूसरी ओर जाकर अपने पूर्व स्थान पर जब तार लौटता है तो इस प्रकार एक अन्दोलन करता है।

एक अन्दोलन करने के बाद दूसरा अन्दोलन करता है और फिर तीसरा इसी प्रकार इन अन्दोलनों का क्रम बराबर चलता रहता है। परन्तु जैसे ही तार पर किये गये प्रहार कि शक्ति कम होती जाती है वैसे ही तार के ऊपर नीचे आने जाने की दूरी कम होती जाती है और अन्त में जा कर तार शान्त हो जाता है। तार में कंपन शान्त होने से उसकी ध्वनि भी शान्त हो जाती है।

अन्दोलनों को नापने के लिये यह देखा जाता है कि एक सेकिन्ड में तार कितने अन्दोलन करता है। अर्थात अन्दोलनों का मापदंड एक सेकिन्ड माना गया है एक सेकिन्ड में अन्दोलनों की संख्या जितनी कम होगी नाद उतना ही नीचा होगा तथा एक सेकिन्ड में अन्दोलनों की संख्या जितनी अधिक होगी नाद उतना ही ऊंचा होगा। इसलिये नाद का ऊँचा नीचा पन हर सेकिन्ड में होने वाली अन्दोलन संख्याओं पर निर्भर होता है। दूसरी बात यह है कि एक सेकिन्ड में अन्दोलन (Vibration) नियमित (regular) होना चाहिये।

विज्ञान दाताओं ने यह पता लगाया है कि सबसे नीचा नाद, जो साधारणतः सुनाई नहीं पड़ता परन्तु अभ्यस्त होने पर सुनाई पड़ सकता है, एक सेकिन्ड में १६ अन्दोलन करता है। कुछ विद्वानों का विचार है कि एक सेकिन्ड में २० अन्दोलन करने वाला नाद हम साधारणतः सुन सकते हैं। सबसे ऊंचे नाद की अन्दोलन संख्या एक सेकिन्ड में लगभग ३०,००० हो सकती है, परन्तु इतनी ऊंची आवाज संगीत के काम की नहीं है। पाश्चात्य विद्वान एक सेकिन्ड में १६ अन्दोलन से लेकर एक सेकिन्ड में ४००० अन्दोलन संख्याओं के स्वरों को संगीतोप-

शेगी बलता कर ६ सप्तक बनाते हैं। इन ६ सप्तकों में से भी केवल बीच के ३ सप्तक के स्वर ही संगीत का अत्यधिक आनन्द देते हैं। विद्वानों ने यह भी मालूम किया है कि मध्य सप्तक के षडज (middle c) की अन्दोलन संख्या एक सेकिन्ड में कितनी है। इस बात पर लोगों में कुछ मतभेद हो गया है, क्योंकि कुछ विद्वान मध्य षडज में २४० अन्दोलन संख्या एक सेकिन्ड में मानते हैं तथा कुछ विद्वान मध्य षडज (Middle c) में २५६ अन्दोलन संख्यायें एक सेकिन्ड में मानते हैं। नीचे दोनों मतों के अनुसार सप्तक के स्वरों की अन्दोलन संख्यायें दी जाती हैं :—

यदि मध्य सा (Middle c) २४० फ्रीक्वेनसीज (Frequencies) का माना जाय :—

(१) सा (Middle c) = २४० (Frequencies)
(२) रे (D) = २७० ,,
(३) ग (E) = ३०० ,,
(४) म (F) = ३२० ,,
(५) प (G) = ३६० ,,
(६) ध (A) = ४०० ,,
(७) नि (B) = ४५० ,,

यदि मध्य सा (Middlec) २५६ फ्रीक्वेनसीज (Frequencies) का माना जाय :—

(१) सा (Middle c) = २५६
(२) रे (D) = २८८
(३) ग (E) = ३२०
(४) म (F) = २४१$\frac{1}{3}$

Digitized from www.dbaudio.in

(५) प (G) =३८४
(६) ध (A) =४२६$\frac{2}{3}$
(७) नि (B) =४८०

नोट:—सरलता के लिये "एक सेकिन्ड में अन्दोलन संख्या" को फ्रीक्वेनसी (Frequency) कहते हैं। उदाहरण के लिये यदि हमें कहना है कि "सा की अन्दोलन संख्या एक सेकिन्ड में २४० हैं", तो केवल यह कह सकते हैं कि सा=२४० फ्रीक्वेनसीज़ (Frequencies)।

वीणा के तार की लम्बाई पर मध्यकालीन स्वरों की स्थापना

वीणा के तार की लम्बाई पर सबसे प्रथम स्वरों की स्थापना पं० अहोबल ने अपने ग्रन्थ "संगीत पारिजात" में की। इन्हीं का अनुकरण बाद के ग्रन्थकारों ने किया। परन्तु मध्यकालीन ग्रन्थकारों में 'वीणा की तार पर स्वरों की स्थापना' का सबसे स्पष्ट वर्णन हमको श्रीनिवास के "राग तत्त्वविबोध" नामक ग्रन्थ में मिलता है। इसलिये श्रीनिवास के अनुसार वीणा के तार पर सप्तक के स्वरों की स्थापना नीचे दी जाती है :—

श्रीनिवास, और अन्य ग्रन्थकारों की तरह अपनी वीणा के तार की लम्बाई (घुड़च से लेकर अटक तक) ३६ इच की मानते हैं। इस तार को छेड़ने से षडज स्वर निकलता है।

तार षड़ज :—घुड़च और अटक के बीचोंबीच तार षडज की स्थापना होती है अर्थात तार की लम्बाई=३६ इंच। इसके बीच में यानी घुड़च से १८ इंच पर तार-षडज हुआ।

मध्यम :—श्रीनिवास मध्यम स्वर की स्थापना तार सां और अटक (मेरु) के बीच में करते हैं। तार सा और मेरु के

तार की लम्बाई १८ इंच है इसलिये मध्यम स्वर घुड़च से १८+६=२७ इंच पर हुआ।

पंचम :—मेरु (अटक) और तार सां की लम्बाई को तीन भागों में विभाजित करने पर मेरु से दूसरे भाग पर पंचम स्वर का स्थान होगा। अर्थात् मेरु और तार सा=१८ इंच है और तीन हिस्सों के बाद मेरु से दूसरे हिस्से पर यानी मेरु से १२ इंच पर और घुड़च से १८+६=२४ इंच पर पंचम स्वर की स्थापना होगी।

गन्धार :—गन्धार स्वर की स्थापना मेरु और पंचम स्वर के बीच में की गई है। क्योंकि मेरु और पंचम की लम्बाई =१२ इंच है, इसलिये गन्धार स्वर=मेरु से ६ इंच पर अर्थात् घुड़च से २४+६=३० इंच पर होगा।

ऋषभ :—मेरु और पंचम स्वर के तार की लम्बाई जो १२ इंच है, को तीन भागों में विभाजित करते हैं और मेरु से पहले भाग पर ऋषभ स्वर स्थापित होता है अर्थात् घुड़च से २४+८=३२ इंच पर ऋषभ हुआ।

धैवत :—धैवत स्वर की स्थापना श्रीनिवास ने षड़ज-पंचम भाव से की है। अर्थात् ऋषभ का $\frac{3}{2}$ धैवत है क्योंकि सा-प, रे-ध, गनि, म-सां इस प्रकार षडज-पंचम भाव की जोड़ियाँ सप्तक में होती हैं।

इसलिये धैवत स्वर की स्थापना गन्धार स्वर से $1\frac{1}{2}$ लम्बाई पर की गई है। क्योंकि ऋषभ ३२ इंच पर है इसलिये धैवत घुड़च से $=३२\div\frac{3}{2}=३२\times\frac{2}{3}$ या $\frac{64}{3}=21\frac{1}{3}$ इंच पर स्थापित है।

निषाद :—निषाद स्वर की स्थापना के लिये श्रीनिवास ने पंचम व तार षडज की लम्बाई को तीन भागों में बाँटा है

और पंचम से दूसरे भाग पर या तार षडज से पहले भाग पर निषाद की स्थापना की है। पंचम से तार सां की लम्बाई = ६ इंच है इसलिये निषाद स्वर घुड़च से = १८ + २ = २० इंच पर होगा।

इसके अलावा अनिरुद्ध ने सप्तक के पाँच विकृत स्वरों की स्थापना वीणा के तार की लम्बाई पर इस प्रकार की है :—

(१) कोमल ऋषभ :—मेरु (मध्य सा) और शुद्ध ऋषभ के तार की लम्बाई को तीन भागों में बाँट कर मेरु से दूसरे भाग पर कोमल रे की स्थापना की गई है। अर्थात् सा और रे = ४ इंच और इनके तीन भाग करने पर एक भाग = $\frac{४}{३}$, अब शुद्ध ऋषभ से पहले भाग पर या घुड़च से कोमल रे की लम्बाई = ३२ + $\frac{४}{३}$ = ३३$\frac{१}{३}$ इंच है।

(२) कोमल धैवत :—कोमल धैवत की स्थापना शुद्ध धैवत की तरह षडज पंचम भाव से की गई है। अर्थात कोमल ऋषभ से १$\frac{१}{२}$ लम्बाई पर कोमल धैवत हुआ। ३३$\frac{१}{३}$ ÷ $\frac{३}{२}$ या $\frac{१००}{३}$ × $\frac{२}{३}$ = $\frac{२००}{९}$ = २२$\frac{२}{९}$ इंच पर (घुड़च से) कोमल धैवत हुआ।

(३) तीव्र गन्धार—मध्यकाल में कोमल गन्धार को शुद्ध गन्धार कहते थे इसलिये तीव्र गन्धार उनके समय में विकृत स्वर माना जाता था।

तीव्र गन्धार की स्थापना मेरु और धैवत के बीच में करते थे। धैवत और मेरु के बीच की लम्बाई = ३६ − २१$\frac{१}{३}$ = १४$\frac{२}{३}$ या $\frac{४४}{३}$ इंच है। इसके बीच में $\frac{४४}{३ \times २}$ = $\frac{२२}{३}$ अर्थात् तीव्र गन्धार घुड़च से = २१$\frac{१}{३}$ + ७$\frac{१}{३}$ = २८$\frac{२}{३}$ इंच पर हुआ।

(४) तीव्र निषाद :—जिस प्रकार तीव्र गन्धार मध्यकाल में विकृत स्वर माना जाता था उसी प्रकार तीव्र निषाद भी मध्यकाल में विकृत स्वर माना जाता था।

इस स्वर की स्थापना श्रीनिवास, धैवत और तार सां की लम्बाई को तीन भागों में बाँट कर धैवत से दूसरे भाग पर करते हैं। धैवत और तार षडज की लम्बाई = २१$\frac{१}{३}$ − १८ = ३$\frac{१}{३}$ या $\frac{१०}{३}$ इंच, इसके तीन भाग करने पर एक भाग = $\frac{१०}{३ \times ३} = \frac{१०}{९}$ इंच। इसलिये तीव्र निषाद घुड़च से = १८ + १$\frac{१}{९}$ = १९$\frac{१}{९}$ इंच पर होगा।

(५) तीव्रतर मध्यम :—श्रीनिवास इस स्वर की स्थापना, तीव्र गन्धार और तार षडज की लम्बाई को तीन भागों में बाँट कर तीव्र गन्धार से पहले भाग पर करते हैं। तीव्र गन्धार और तार सां की लम्बाई = २८$\frac{१}{३}$ − १८ = १०$\frac{१}{३}$ या $\frac{३२}{३}$ इंच। इसके तीन भाग करने पर एक भाग = $\frac{३२}{३ \times ३}$ या $\frac{३२}{९}$ इंच का होगा। अब तीव्रतर मध्यम घुड़च से = १८ + $\frac{३२}{९}$ + $\frac{३२}{९}$ = १८ + $\frac{६४}{९}$ = २५$\frac{३}{९}$ इंच पर होगा।

इस प्रकार हमने देखा कि श्रीनिवास ने सप्तक के १२ शुद्ध तथा विकृत स्वरों की स्थापना वीणा के तार की लम्बाई पर निम्नलिखित स्थानों पर की जब कि वीणा के तार की लम्बाई ३६ इंच है :—

शुद्ध स्वर :—

(१) षडज = ३६ इंच तथा तार षडज = १८ इंच

(२) ऋषभ = ३२ इंच

(३) गंधार = ३० इंच

(४) मध्यम = २७ इंच

(५) पंचम = २४ इंच

(६) धैवत = २१$\frac{१}{३}$ इंच

(७) निषाद = २० इंच

विकृत स्वर :—

(१) कोमल ऋषभ = ३३$\frac{१}{३}$ इंच

(२) तीव्र गन्धार = २८$\frac{२}{३}$ इंच

(३) तीव्रतर मध्यम = २५$\frac{१}{२}$ इंच

(४) कोमल धैवत = २२$\frac{२}{३}$ इंच

(५) तीव्र निषाद = १९$\frac{२}{३}$ इंच

यह तो हुई मध्यकालीन स्वरों की वीणा के तार पर स्थापना। परन्तु आधुनिक समय में इन स्वरों में से कुछ स्वरों में अन्तर आ गया है। क्योंकि मध्यकालीन ग्रन्थकारों का शुद्ध थाट आजकल के काफी थाट के समान था अर्थात् उनके शुद्ध थाट में आजकल के कोमल गन्धार और कोमल निषाद का प्रयोग होता था। परन्तु आजकल का शुद्ध थाट बिलावल है। स्व० भातखण्डे जी ने आधुनिक सप्तक के १२ स्वरों की स्थापना वीणा के तार को लम्बाई पर की है। क्योंकि भातखण्डे जी ने स्वरों की स्थापना अपनी पुस्तक 'अभिनव रागमंजरी' में की है इसलिये भातखण्डे जी को मंजरीकार कह कर सम्बोधित किया जाता है।

मंजरीकार के आधुनिक स्वरों की, वीणा के तार पर स्थापना

नीचे मंजरीकार द्वारा स्थापित स्वरों के स्थान दिये जाते हैं :—

शुद्ध स्वर

(१) षडज = ३६ इंच
(२) ऋषभ = ३२"
(३) गन्धार = २८$\frac{२}{३}$"
(४) मध्यम = २७"
(५) पंचम = २४"
(६) धैवत = २१$\frac{१}{३}$"
(७) निषाद = १९$\frac{१}{२}$"

विकृत स्वर :—

(१) कोमल ऋषभ = ३४ इंच
(२) कोमल गन्धार = ३०"
(३) तीव्र मध्यम = २५$\frac{१}{२}$"
(४) कोमल धैवत = २२$\frac{२}{३}$"
(५) कोमल निषाद = २०"

वीणा के तार की लम्बाई पर स्वरों की स्थापना में पं० श्रीनिवास तथा मंजरीकार की तुलना।

(१) मध्यकालीन ग्रन्थकारों की तरह पं० श्रीनिवास ने अपनी पुस्तक "राग तत्त्वविबोध" में अपना शुद्ध थाट आजकल के काफी थाट के सदृश्य माना है।

मंजरीकार का शुद्ध थाट आजकल का बिलावल थाट है, जिसके ७ स्वर शुद्ध हैं।

www.sbraulibrary.org.in

(२) पं० श्रीनिवास कोमल ऋषभ की स्थापना करने के लिये षडज और ऋषभ की लम्बाई के तीन भाग कर के सा से दूसरे भाग पर कोमल ऋषभ को रखते हैं। इनका कोमल ऋषभ = ३३$\frac{1}{3}$ इंच पर है।

परन्तु मंजरीकार कोमल ऋषभ को षडज और शुद्ध ऋषभ के बीच में रखते हैं। इनका कोमल ऋषभ = ३४ इंच पर है।

(३) पं० श्रीनिवास ने कोमल धैवत को षडज-पंचम भाव से निकाला है परन्तु क्योंकि उनका कोमल ऋषभ = ३३$\frac{1}{3}$ इंच पर था इस कारण कोमल धैवत = २२$\frac{2}{3}$ इंच पर है।

मंजरीकार ने भी कोमल धैवत को षडज-पंचम भाव से निकाला है परन्तु मंजरीकार के कोमल ऋषभ का स्थान श्रीनिवास से भिन्न था इसलिये इनका कोमल धैवत भी श्रीनिवास से भिन्न है जो २२$\frac{2}{3}$ इंच पर है।

(४) पं० श्रीनिवास ने तीव्रतर मध्यम की स्थापना करने के लिये तीव्र गन्धार और वार षडज के बीच की लम्बाई को तीन बराबर भागों में बांट कर तीव्र गंन्धार से प्रथम भाग पर उसे रक्खा है। इसलिये तीव्रतर मध्यम = २५$\frac{1}{3}$ इंच पर है।

परन्तु मंजरीकार ने तीव्र मध्यम को शुद्ध मध्यम और पंचम के बीच में रक्खा है और इसलिये उसकी लम्बाई = २५$\frac{1}{2}$ इंच है।

(५) पं० श्रीनिवास के स्वरों में केवल कोमल ऋषभ, तीव्रतर मध्यम व कोमल धैवत स्वरों को छोड़कर बाकी सब स्वरों का आजकल प्रचार है।

परन्तु मंजरीकार के सभी स्वर आजकल प्रचलित हैं।

अन्दोलन संख्या से तार की लम्बाई व तार की लम्बाई से स्वरों की अन्दोलन संख्या को निकालना

यदि किसी स्वर की अन्दोलन संख्या दी गई है तो हमको उस स्वर के तार की लम्बाई भी मालूम हो सकती है। परन्तु हमको यह याद रहना चाहिये कि षडज स्वर की अन्दोलन संख्या २४० है व इसके तार की लम्बाई ३६ इंच है। सबसे प्रथम दिये हुये स्वर की अन्दोलन संख्या और षडज स्वर की अन्दोलन संख्या का गुणान्तर निकालते हैं, फिर षडज के तार की लम्बाई में उसका भाग देते हैं। जैसे उदाहरण के लिये यदि मध्यम स्वर की अन्दोलन संख्या ३२० है तो उसकी लम्बाई इस प्रकार होगी :—

गुणान्तर $= \frac{३२०}{२४०} = \frac{४}{३}$ तार पर मध्यम स्वर की लम्बाई $= ३६ \div \frac{४}{३} = ३६ \times \frac{३}{४} = २७$ इंच।

इसी प्रकार यदि तार पर किसी स्वर की लम्बाई दी गई हो और उसकी अन्दोलन संख्या निकालना हो, तो दी गई स्वर की लम्बाई व षडज के तार की लम्बाई का गुणान्तर निकाल कर उसका भाग षडज की अन्दोलन संख्या में देते हैं। जैसे यदि तार पर पंचम स्वर की लम्बाई २४ इंच है तो उसकी अन्दोलन संख्या = आन्दोलन संख्या (सा) ÷ गुणान्तर $(\frac{२४}{३६})$

अर्थात् पंचम स्वर की अन्दोलन संख्या $= २४० \div \frac{२}{३} = २४० \times \frac{३}{२} = ३६०$

भारत की उत्तरी तथा दक्षिणी संगीत पद्धतियों की तुलना

जैसा कि शुरू में बतलाया जा चुका है कि भारत में आजकल संगीत की दो पद्धतियाँ प्रचलित हैं, जिन्हें उत्तरी या हिन्दु

स्तानी तथा दक्षिणी या कर्नाटकी संगीत पद्धतियाँ कहते हैं। कुछ लोगों का विचार है कि यह दोनों पद्धतियाँ एक दूसरे से बहुत कुछ भिन्न हैं तथा इनमें समानता बिलकुल नहीं है। परन्तु मेरे विचार से इन दोनों पद्धतियों में बहुत कुछ समानता है। सब से पहिले तो यह कहना पड़ेगा कि दोनों पद्धतियों के मूल तत्त्व एक हैं। दोनों की आत्मा एक है केवल अन्तर उनके प्रदर्शन में है। दोनों का श्रोत एक है पर अन्तर केवल आवरण में है। दोनों पद्धतियाँ शारंगदेव कृत "संगीत रत्नाकर" नामक पुस्तक को अपना अपना आधारिक ग्रन्थ मानती हैं। भारत में संगीत की यह दोनों पद्धतियाँ बहुत प्राचीन काल से प्रचलित हैं। दोनों पद्धतियों में एक सप्तक में शुद्ध तथा विकृत १२ स्वर तथा एक सप्तक में २२ श्रुतियाँ मानते हैं। दोनों पद्धतियाँ थाटों से रागों की उत्पत्ति मानती हैं।

भिन्नता:—इतनी समानता होने पर भी दोनों पद्धतियों के स्वरूप प्रदर्शन में भिन्नता पाई जाती है। दोनों में भिन्नता इस प्रकार है:—

(१) दोनों पद्धतियों की थाट संख्या अलग है। दक्षिणी संगीत पद्धति में ७२ थाटों को माना जाता है जब कि हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में १० थाट माने जाते हैं। इन ७२ थाटों की उत्पत्ति समझाई जा चुकी है। इन्हीं ७२ थाटों से हजारों रागों की उत्पत्ति मानी जाती है परन्तु हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में सब रागों को १० थाटों के अन्तरगत ही मानते हैं।

(२) दोनों पद्धतियों के थाटों के नामों में अन्तर है तथा कुछ अन्तर थाटों के स्वरूपों में भी है।

(३) दोनों पद्धतियों के स्वरों में भी बहुत कुछ अन्तर है। यही अन्तर होने के कारण व्यंकटमखी ने ७२ थाटों की उत्पत्ति

की, जब कि गणितानुसार हिन्दुस्तनी पद्धति के स्वरों से केवल ३२ थाट उत्पन्न हो सकते हैं। दोनों पद्धतियों के स्वरों के नामों में भी अन्तर है। उदाहरण के लिये हमारे यहाँ के कोमल ऋषभ की जगह वे लोग शुद्ध ऋषभ मानते हैं और अपने कोमल धैवत के स्थान पर वे लोग शुद्ध धैवत मानते हैं। इसी प्रकार अपनी पद्धति के शुद्ध रे व शुद्ध ध उनकी पद्धति के अनुसार शुद्ध ग व शुद्ध नि होते हैं। उनके यहाँ कुछ स्वरों के दो-दो रूप भी हैं।

दूसरी बात जो दक्षिणी पद्धति के स्वरों में है वह यह है कि उनके यहाँ कोमल स्वर नहीं होते अर्थात स्वर कभी अपने निजी स्थान से नीचे की ओर विकृत नहीं होते हैं। उनके यहाँ विकृत स्वर की सबसे नीची अवस्था शुद्ध होती है तथा और सब रूप शुद्ध स्वर से ऊंचे ही होते हैं। उदाहरण के लिये पहले उनके यहाँ शुद्ध 'रे' आता है फिर उससे ऊंचा चतुः श्रुति रे तथा बाद में षटश्रुति रे आता है। इससे स्पष्ट है कि उनकी पद्धति में शुद्ध स्वरों की अवस्था सबसे नीची मानी जाती है परन्तु अपनी पद्धति में कोमल स्वर की अवस्था सबसे नीची होती है। नीचे लिखी स्वरों की तुलना से दोनों पद्धतियों के स्वरों को स्पष्ट किया जा सकता है:—

हिन्दुस्तानी स्वर		दक्षिणी स्वर
(१) 'सा'	————	'सा'
(२) कोमल 'रे'	————	शुद्ध 'रे'
(३) शुद्ध 'रे'	————	शुद्ध 'ग' (चतुः श्रुति 'रे')
(४) कोमल 'ग'	————	साधारण 'ग' (षटश्रुति 'रे')
(५) शुद्ध 'ग'	————	अंतर 'ग'
(६) शुद्ध 'म'	————	शुद्ध 'म'
(७) तीव्र 'म'	————	प्रति 'म'

(८) 'प'————————————'प'
(९) कोमल 'ध'————————————शुद्ध 'ध'
(१०) शुद्ध 'ध'————————————शुद्ध 'नि' (चतुः श्रुति 'ध')
(११) कोमल 'नि'————————————कैशिक 'नि' (षटश्रुति 'ध')
(१२) शुद्ध 'नि'————————————काकली 'नि'

(४) ताल पद्धति

दक्षिणी संगीत की ताल पद्धति उत्तरी संगीत की ताल पद्धति से पूर्णतया भिन्न है। हिन्दुस्तानी संगीत में तालों की संख्या सीमित नहीं है तथा मात्राओं व विभागों के अनुसार अपनी पद्धति में तालों की रचना हुई है। परन्तु दक्षिणी ताल पद्धति इससे बिलकुल भिन्न है। दक्षिणी ताल पद्धति को नीचे दिया जाता है:—

इस पद्धति के अनुसार कुल ७ मुख्य ताल माने जाते हैं जिनके नाम इस प्रकार हैं— (१) ध्रुव (२) मठ (३) रूपक (४) झप (५) त्रिपुट (६) अठ (७) एकताल।

इन तालों में हर ताल की पाँच-पाँच जातियाँ होती हैं जो इस प्रकार है:—(१) चतस्त्र जाति (२) त्रिस्त्र जाति (३) मिश्र-जाति (४) खंड जाति (५) सकीर्ण जाति। हर ताल की मात्रायें उनकी जातियों के हिसाब से बदल जाती है।

कुल ७ मुख्य ताल हैं और उनकी पाँच-पाँच जातियाँ हैं, इस प्रकार कुल ७×५=३५ ताल इस पद्धति में माने जाते हैं अर्थात ३५ तालों की पद्धति यहाँ प्रचलित है।

हर ताल की पाँच जातियाँ उनकी मात्राओं के साथ इस प्रकार होंगी:—

मुख्य ताल	चतस्र जाति	त्रिस्र जाति	मिश्र जाति	खंड जाति	संकीर्ण जाति
१. ध्रुव ताल	४—२—४—४	३—२—३—३	७—२—७—७	५—२—५—५	९—२—९—९
२. मठ ताल	४—२—४	३—२—३	७—२—७	५—२—५	९—२—९
३. रूपक ताल	४—२	३—२	७ २	५—२	९—२
४. झंप ताल	४—१—२	३—१—२	७—१—२	५—१—२	९—१—२
५. त्रिपुट ताल	४—२—२	३—२—२	७—२—२	५—२—२	९—२—२
६. अठ ताल	४—४—२—२	३—३—२—२	७—७—२—२	५—५—२—२	९—९—२—२
७. एक ताल	४	३	७	५	९

Downloaded from www.dharmadhara.org

दक्षिणी पद्धति में तालों की मात्रायें और थाप लिखने के लिये निम्नलिखि चिन्ह उपयोग में लाये जाते हैं : –

‿ विराम—मात्रा १
० द्रुत—मात्रा २
। लघु—मात्रा ४

यह तीन चिन्ह आधुनिक ३५ तालों की पद्धति में प्रयुक्त होते हैं तथा १०८ तालों की पद्धति में ३ और चिन्ह इस प्रकार हैं :—

ऽ—मात्रा ८
३—मात्रा १२
+ — मात्रा १६

आजकल यह ३ चिन्ह प्रयोग में नहीं लाये जाते हैं। ऊपर लिखे ३ चिन्ह जो आजकल प्रयोग में आते हैं उनकी सहायता से दक्षिणी ताल इस प्रकार लिखेंगे :

ध्रुवताल (४-२-४-४) = ।०।। तीन लघु एक द्रुत

ताल में जितने चिन्ह होंगे उतनी ही थाप समझना चाहिये। अर्थात् चिन्हों की संख्या ही विभागों की संख्या मानी जाती है। खाली का अलग विभाग नहीं होता है। ताल की सम हमेशा पहली मात्रा पर ही पड़ती है जो हिन्दुस्तानी ताल पद्धति के अनुसार ही है। ताल की जाति बदलने पर चिन्ह नहीं बदलते केवल जाति का उल्लेख कर दिया जाता है। चिन्ह ताल की हर जाति में एक से ही रहते हैं। अर्थात् त्रिस्र जाति का ध्रुव भी ।०।। इस प्रकार लिखा जावेगा। जाति बदलने पर लघु (।) का मूल्य बदल जाता है। जैसे चतस्र में लघु का मूल्य ४

मात्रा है तो त्रिस्र जाति में लघु का मूल्य ३ मात्रा और मिश्र जाति में लघु का मूल्य ५ मात्रा का माना जावेगा।

सरलता की दृष्टि से नीचे ध्रुवताल को हिन्दुस्तानी ताल पद्धति में दिया जाता है :—

१ २ ३ ४	५ ६	७ ८ ९ १०	११ १२ १३ १४
×	२	३	४

यह चतस्र जाति का ध्रुवताल हुआ। अब यदि ध्रुवताल त्रिस्र जाति का माना जाय तो उसमें लघु तीन मात्रा का होगा :—

१ २ ३	४ ५	६ ७ ८	९ १० ११
×	२	३	४

देखने पर हम मालूम कर सकते हैं कि कर्नाटकी अठताल (।।००) हमारे यहाँ के चारताल या एकताल के सामान है। क्योंकि उनकी पद्धति में खाली का अलग स्थान नहीं होता है। जिस प्रकार कर्नाटकी ताल हिन्दुस्तानी पद्धति में लिखे जा सकते हैं। उसी तरह हिन्दुस्तानी ताल कर्नाटकी पद्धति में लिखे जा सकते हैं :—

यदि रूपताल (२-३,२-३) को कर्नाटकी पद्धति में लिखा जाय तो उसके विभाग २-३-२-३ न रह कर २-५-३ होंगे क्योंकि खाली का विभाग नहीं बनाया जावेगा। अब इसे इस प्रकार लिखेंगे—०।० इसी प्रकार चौताल या एकताल को लिखने के लिये यह विभाग होंगे ४-४-२-२ =।। ० ०

इस प्रकार हमने देखा कि कर्नाटक ताल पद्धति हिन्दुस्तानी ताल पद्धति से भिन्न है। उनके यहाँ सीमित ताल हैं परन्तु अपने यहाँ तालों की सीमा नहीं बांधी जा सकती है। कर्नाटकी पद्धति

में इन तालों को बजाने के लिये मृदंग, पखावज आदि का अधिक प्रयोग होता है परन्तु हिन्दुस्तानी पद्धति में आजकल तबले का प्रचार अधिक है।

(५) कर्नाटकी-राग

दोनों पद्धतियों के रागों में भी अन्तर पाया जाता है। रागों के नामों में तो कहीं कहीं साम्य है परन्तु उनके स्वर तथा स्वरूपों में अन्तर पाया जाता है। कुछ रागों के तो नाम बिलकुल नये हैं, कुछ नाम दोनों में एक से है तथा कुछ नाम उलट-पुलट कर रख दिये हैं, जैसे अपने यहाँ जिस राग को भैरवी कहते हैं दक्षिणी पद्धति में उसे तोड़ी कहते हैं तथा जिस राग को हम लोग तोड़ी कहते हैं दक्षिणी पद्धति में उसे 'शुभ पंतुवराली' कहते हैं। नीचे दोनों पद्धतियों के कुछ रागों की, जो आपस में समता रखते हैं, सूची दी जाती है :—

हिन्दुस्तानी राग	कर्नाटकी राग
(१) कल्याण	मेचकल्याणी
(२) बिलावल	धीर शंकराभरण
(३) भूपाली	मोहनम
(४) भैरवी	तोड़ी
(५) तोड़ी	शुभ पंतुवराली
(६) आसावरी	मुखारी
(७) भीमपलासी	अभेरी
(८) बागेश्री	श्रीरंजनी
(९) जयजयवन्ती	द्विजवन्ती
(१०) खमाज	हरिकांभोजी
(११) काफी	खरहर प्रिया

(१२) मारवा ... ... गमन प्रिया
(१३) दुर्गा ... ... शुद्ध सावरी
(१४) सोहनी ... ... हंसानंदी
(१५) भैरव ... ... मायामालव गौड़

———

Downloaded from www.dbraulibrary.org.in

षष्ठम अध्याय

भारतीय वाद्य

भारतीय वाद्यों को हम चार विभागों के अन्तरगत रख सकते हैं:—(१) तत वाद्य (२ सुषिर वाद्य (३) अवनद्ध वाद्य तथा (४) घन वाद्य।

तत वाद्य:—तत वाद्य वे हैं जिनमें तारों द्वारा स्वरों की उत्पत्ति होती है। वाद्य में लगे हुये तारों पर जब प्रहार किया जाता है तो उसके तार अन्दोलित होते हैं जिससे ध्वनि उत्पन्न होती है। तत वाद्य को तन्त्र वाद्य भी कह सकते हैं। तत वाद्यों को हम दो भागों में विभाजित कर सकते हैं (१) एक तो वे वाद्य जिनके तारों पर प्रहार अंगुलियों द्वारा किया जाता है जैसे—तानपुरा, सितार, सरोद, वीणा आदि। (२) दूसरे प्रकार के तत वाद्य वे हैं जिनके तारों पर प्रहार अंगुलियों से न करके किसी माध्यम से किया जाता है जैसे—सारंगी, बेला, इसराज आदि के तारों पर गज द्वारा प्रहार किया जाता है तथा पियानों के तारों पर लकड़ी के द्वारा प्रहार होता है।

सुषिर वाद्य:— जिन वाद्यों में वायु के प्रवेश से स्वरों की उत्पत्ति होती है वे सुषिर वाद्य कहलाते हैं। इन वाद्यों में या तो मुँह से वायु को पहुँचाते हैं जैसे बाँसुरी, क्लैरोनेट, शहनाई आदि, अथवा धौंकनी द्वारा हवा को प्रवेश करते हैं जैसे—हारमोनियम, आरगन आदि।

अवनद्ध वाद्य:—जिन वाद्यों में खिंचे हुये चमड़े या खाल पर प्रहार करने से ध्वनि उत्पन्न होती है वे अवनद्ध वाद्य कहलाते हैं। इन वाद्यों को ताल वाद्य भी कहा जाता है क्योंकि ये वाद्य केवल ताल बजाने के प्रयोग में आते हैं। अवनद्ध वाद्यों में मृदंग, तबला, पखावज, नगाड़ा, डमरू, ढोलक आदि आते हैं।

घन वाद्य:—जिन वाद्यों में स्वरों की उत्पत्ति लकड़ी अथवा किसी धातु द्वारा होती है वे घन वाद्य कहलाते हैं जैसे—मंजीरा, झांझ, जलतरंग, काष्ठतरंग आदि। इन वाद्यों में कुछ वाद्य ताल से सम्बन्धित होते हैं, जिनका कार्य ताल दिखलाना होता है जैसे मजीरा, झांझ, करताल आदि।

कुछ लोगों का मत है कि भारतीय वाद्यों को केवल दो विभागों में विभाजित किया जा सकता है—

(१) जो गायन से संबन्धित हैं (२) जो ताल से सम्बन्धित हैं। परन्तु यह वर्गीकरण पूर्ण नहीं कहा जा सकता है क्योंकि इसके अनुसार भारतीय वाद्यों के अनेक प्रकारों की कोई उचित व्याख्या नहीं की जा सकती। कुछ लोग तत वाद्यों को दो विभागों में न करके उन्हें प्रथक-प्रथक रखते हैं और इस प्रकार कुल पांच भागों में वाद्यों को विभाजित करते हैं—(१) तत (२) वितत (३) सुषिर (४) घन (५) अवनद्ध। यह विभाजन भी उचित है परन्तु ऊपर लिखा विभाजन इन सबसे श्रेष्ट कहा जा सकता है।

तानपूरा

संगीत में स्वर देने के लिये प्रमुख वाद्य का नाम तानपूरा है। तानपूरे को तम्बूरा, तानपुरा आदि नामों से पुकारा जाता है। तम्बूरे का नाम उसके अविष्कार करने वाले

तुम्बरू नामक गन्धर्व पर ही पड़ा। इस वाद्य के विभिन्न अंग इस प्रकार हैं :—

तूम्बा :—लौकी अथवा कद्दू का बना गोलाकार बड़ा भाग तूम्बा होता है।

तबली :—तूम्बे को ढकने के लिये लकड़ी का जो ढक्कन होता है जिस पर घुरच आदि रक्खे जाते हैं तबली कहलाता है।

घुरच :—तबली के ऊपर लकड़ी या हड्डी की एक चौकी होती है जिस पर तार रक्खे रहते हैं वह घुरच (Bridge) कहलाती है।

कील :—तूम्बे के सिर पर तारों के बांधने का प्रबन्ध होता है। कभी तो एक कील लगा दी जाती है और कभी चार छिद्र कर दिये जाते हैं।

डाँड :—तूम्बे के बाद जो लंम्बा हिस्सा तानपूरे में होता है जिसमें खूंटियाँ आदि होती है, डाँड कहलाता है।

गुल :—तूम्बे और डाँड के जोड़ने के स्थान को गुल कहते हैं।

अटी व तार गहन :—खूंटियों के पास हड्डी की दो सफेद पट्टियाँ लगी रहती हैं जिन पर तार आधारित होते हैं। इन दोनों पट्टियों में से जिस पट्टी पर तार रक्खे रहते हैं उसे अटी कहते हैं और जिस पट्टी में से तार पिरोये जाते है वह तारगहन कहलाती है।

खूंटियाँ :—तानपूरे के अटी व तारगहन के पीछे चार खूंटियाँ होती हैं जिन में तार कसे रहते हैं। इन खूंटियों द्वारा ही तारों को कसा या ढीला किया जाता है।

तानपूरा

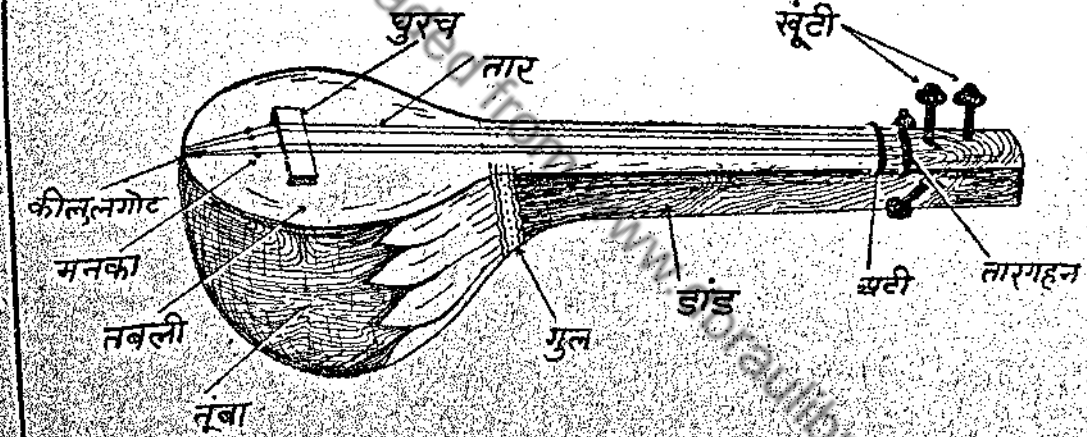

Downloaded from www.brajlibrary.org

सिरा :— अटी व तारदान के बाद तानपूरे का वह भाग जिसमें चार खूंटियाँ होती है सिरा कहलाता है।

मनका :— घुरच तथा कील के बीच तारों में मोती पड़े रहते हैं जिनसे तार का स्वर मिलाने में सहायता मिलती है। इन मोतियों को मनका अथवा गुरिया कहते हैं।

तार :— तानपुरे में चार तार होते हैं यह चारों तार कील में बांधे जाते हैं तथा घुरच के ऊपर से होकर व तारदान और अटी में से होकर खूंटियों में लपेटे जाते है।

सूत या धागा:— घुरच पर तारों के नीचे सूत लगा रहता है। इस सूत के कारण ही तार झनकार उत्पन्न करता है। तार में झनकार उत्पन्न करने को जवारी कहते है।

तानपुरे के तारों का मिलाना।

तानपुरे में चार तार होते हैं। पहला तार लोहे का होता है। कभी कभी मर्दाने तानपूरों में पहला तार पीतल का भी होता है। इस तार को पंचम का तार कहते हैं तथा इसे मन्द्र सप्तक के पंचम स्वर से मिलाते हैं। जिस राग में पंचम वर्जित होता है जैसे मालकोस, तो इस तार को मन्द्र के मध्यम से मिलाते हैं तथा जिस राग में शुद्ध मध्यम भी नहीं लगता जैसे, पूरिया तो इस तार को मन्द्र निषाद से या मन्द्र गन्धार से मिलाते है। तानपूरे के दूसरे व तीसरे तार फौलादी लोहे के होते हैं। यह पहले तार से कुछ पतले होते हैं। इन्हें जोड़ी के तार कहते हैं तथा मध्य सप्तक के षडज से दोनों को मिलाते हैं। तानपूरा मिलाने के लिये सबसे प्रथम इन्हीं दो तारों को गायक अपने

गले के स्वर (मध्य सा) से मिलाता है। चौथा तार मोटे पीतल का होता है तथा इसे मन्द्र सप्तक के षडज से मिलाया जाता है। क्योंकि यह मन्द्र के षडज से मिलाया जाता है इसलिये इसे खरज का तार भी कह कर पुकारते हैं।

सितार

सितार के अविष्कार के लिये अभी तक कोई निश्चित मत नहीं हो सका है। बहुत से लोगों का विचार है कि चौदहवीं शताब्दी में अमीर खुसरो ने वीणा के आधार पर 'सहतार' नामक वाद्य का आविष्कार किया। सहतार एक फारसी शब्द है जिसका अर्थ होता है तीन तार का वाद्य। अमीर खुसरो ने इस वाद्य में तीन तार लगाये थे। 'सहतार' ही बिगड़ कर 'सितार' कहलाने लगा तथा परिवर्तन के अनुसार तीन के स्थान पर अब इसमें सात तार लगाये जाने लगे हैं।

सितार के अंग

तूंबा :—कद्दू अथवा लौकी का बना गोलाकार भाग तूंबा कहलाता है।

तबली :—तूंबे के ऊपर का भाग जिस पर घुरच रखी जाती है, तबली कहलाता है।

लंगोट :—तूंबे के सिर पर जहाँ सितार के तार बाँधे जाते हैं, उस स्थान को लंगोट कहते हैं।

डाँड :—सितार के लम्बे भाग के नीचे का जो गोलभाग होता है डांड कहलाता है। यह पोला होता है जिस पर ढक्कन के लिए लकड़ी की पट्टी होती है।

Digitized from www.dbraubrary.org

Downloaded from www.vidyarthiplus.com

सितार

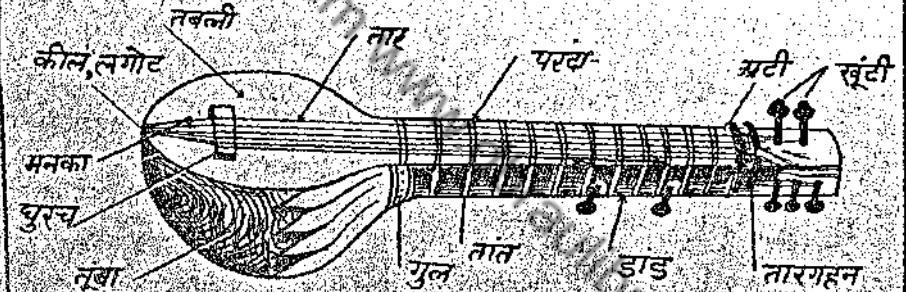

गुल :—जहाँ पर तूंबा और डाँड जुड़ते हैं उसे गुल कहते हैं ।

घुरच :—तबली पर एक चौकी रक्खी रहती है जिसपर तार रक्खे जाते हैं उसे घुरच (Bridge) कहते हैं ।

तारगहन :—खूंटियों के पास हड्डी या हाथी दाँत की दो पट्टियाँ होती हैं इनमें से जिसमें तार पिरोये जाते हैं उसे तारगहन कहते हैं ।

अटी :—खुंटियों के पास की हड्डी की पट्टियों में से जिस पर तार रक्खे जाते हैं । उसे अटी कहते हैं ।

परदे :—डाँड के ऊपर पीतल अथवा लोहे के परदे तांत या धागे से बंधे रहते हैं जिनपर अंगुली रखने से विभिन्न स्वर बजाये जाते हैं ।

मनका :—पहले तार में लंगोट और घुरच के बीच जो मोती पड़ा रहता है तथा जिससे तार को मिलाने में सहायता मिलती है, उसे मनका कहते हैं ।

खूटियाँ—सितार में लकड़ी की बनी सात खूटियाँ होती हैं जिन से तार कसे अथवा ढीले किये जाते हैं ।

सितार के तार तथा उनका मिलाना—सितार में सात तार होते हैं जो इस प्रकार हैं:—

(१) सितार का पहिला तार फौलादी लोहे का बना होता है । इसे बाज का तार कहते हैं और मन्द्र सप्तक के मध्यम से मिलाते हैं ।

(२) और (३)—यह दोनों तार पीतल के होते हैं और जोड़ी के तार कहलाते हैं । दोनों तार मन्द्र सप्तक के षडज से मिलाये जाते हैं ।

(४) चौथा तार लोहे का होता है और पंचम का तार कहलाता है इसे मंद्र सप्तक के पंचम से मिलाते हैं।

(५) पांचवाँ तार पीतल का होता है परन्तु कुछ मोटा होता है। इसे अति मन्द्र सप्तक के पंचम से मिलाते हैं। इसको भी पंचम का तार अथवा 'लर्ज का तार' कहते हैं।

(६) छटा तार लोहे का होता है यह बाज के तार से पतला होता है तथा 'चिकारी' अथवा 'पपीहा-का तार' कहलाता है। यह तार, मध्य सप्तक के षडज से मिलाया जाता है।

(७) सातवाँ तार भी लोहे का होता है और 'चिकारी' या 'पपीहा का तार' कह कर पुकारा जाता है। इस तार को मध्य सप्तक के पंचम से मिलाते हैं।

सितार मिलाते समय पहिले जोड़ी के तारों को मिलाना चाहिये। इनके बाद बाज के तार को मिलाना चाहिये। बाज के तार के बाद पचम के दोनों तारों को एक के बाद एक करके मिलाना चाहिए। इन दोनों की आवाज में एक सप्तक का अन्तर होता है। बाद में छटे तार को और फिर सातवें तार को क्रमश इनके स्वरों में सावधानी से मिलाना चाहिये।

मिज्राब—सितार बजाने के लिये लोहे के तार का बना एक यंत्र होता है, जो सीधे हाथ को तर्जनी उंगली में पहिना जाता है। सितार बजाने के लिये इस यंत्र को उंगली में पहिन कर तार पर प्रहार करते हैं जिससे तार में कम्पन होता है और कम्पन से ध्वनि निकलता है।

मिज्राब का तार पर दो प्रकार से प्रहार होता है। एक जब उंगली को तार पर पटकते हुये अपनी ओर लाना होता है जो आकर्ष-प्रहार कहलाता है इससे "दा" निकलता है। दूसरा प्रहार इसका उल्टा होता है यानी तार पर मिज्राब का प्रहार करके उंगली

को अपनी ओर से ले जाना पड़ता है। इसे अपकर्ष-प्रहार कहते हैं और "ड़" निकलता है

गत—राग के स्वरों में सितार के बोलों को जो तालबद्ध रचना होती है वह गत कहलाती है। गत को दो भागों में विभाजित करते हैं जो स्थाई और अन्तरा कहलाते हैं। गतें दो प्रकार की प्रचलित हैं:—

(१) मसीदखानी—कहते हैं कि तानसेन के वंशजो मसीत खाँ ने इस गत का आविष्कार किया। यह विलंबित लय में बजाई जाती है तथा जमजमा मींड आदि से सुशोभित होती है। इसके बोल-दिड़, दाड़ा, दा दिड़ा दा ड़ा आदि होते हैं। इसे फीरोजखानी गत भी कहते हैं। कोई कोई 'दिल्ली का बाज' भी कह कर इसे पुकारते हैं।

(२) रजाखानी—इस गत के बोल द्रुत लय में बजाये जाते हैं। इसमें अनेक प्रकार की चालें होती हैं। इसके बोल इस प्रकार होते हैं—दा दा ड़ा दा ड़ा दिड़ दिड़ आदि। इसे लखनऊ का बाज' भी कहते हैं।

कुछ लोग एक तीसरे प्रकार की गत भी मानते हैं जिसे अमीरखानी गत कहते हैं। उसके बोल मसीदखानी गत की तरह होते हैं पर यह मध्य लय में बजाई जाती है। प्रारम्भ में सरल होने के कारण इसी गत को सिखाया जाता है। इसे अमीरखानी बाज भी कहते हैं।

जोड़:—जिस प्रकार गायन में आलाप होते हैं उसी प्रकार सितार में जोड़ का काम होता है। गत बजाने के पूर्व जोड़ बजाये जाते हैं जोड़ों द्वारा ही राग का स्वरूप स्पष्ट करते हैं।

तोड़ा:—जिस प्रकार गायन में ताने होती हैं उसी प्रकार सितार में तोड़े होते हैं। विभिन्न प्रकार के तोड़े गत को सुन्दर बनाने के लिये ताल के साथ बजाते हैं।

झाला:—सितार में दा रा रा रा, दा रा रा दा, रा रा रा रा आदि बोलों को 'बाज' के तार से तथा चिकारी के तार की सहायता से बजाने को झाला कहते हैं। सितार का यह कार्य बड़ा मनोहर होता है।

जमजमा:—सितार में दो स्वरों को शीघ्रता से एक के बाद एक करके बजाने को 'जमजमा' कहते हैं। यह काम दो उंगलियों की सहायता से होता है। पहली उंगली परदे पर रहती है और दूसरी उंगली काम करती है जिससे जमजमा उत्पन्न होता है।

तरबें:—कुछ सितारों में मुख्य तारों के नीचे तार लगे रहते हैं। यह तार बजाये नहीं जाते परन्तु इन्हें भिन्न भिन्न स्वरों से मिलाने पर ध्वनि उत्पन्न होती है और मधुरता आती है। इन्हें अंग्रेजी में sympathetic strings कहते हैं।

थाट—सितार दो प्रकार के होते हैं:—

(१) अचल थाट के सितार।

(२) चल थाट के सितार।

अचल थाट के सितार में १६ परदे होते हैं इस कारण चल स्वर आदि बनाने में सुविधा रहती है। चल थाट के सितार में १६ परदे होते हैं। कोमल आदि स्वरों के लिये इसके परदे सरका लिये जाते हैं।

तबला

तबले के दो रूप होते हैं:—(१) दाहिना तबला जो लकड़ी का खोखला बना होता है तथा जिस पर खाल मढ़ी रहती है। (२) बांया तबला या डिग्गा जो मिट्टी अथवा किसी धातु का बना होता है। इस पर भी खाल मढ़ी रहती है। नीचे दाहिने तबले के विभिन्न अंगों को दिया जाता है :—

तबला—यह सीसम, नीम, चंदन, साग आदि लकड़ियों में से किसी का बना खोखला होता है। इस पर खाल मढ़ी रहती है।

पूड़ी—जिस खाल से तबले को मढ़ा जाता है उसे पूड़ी कहते हैं। पूड़ी अधिकतर बकरी की खाल की बनती है। इसे बध्धी अथवा रस्सी से तबले पर कसते हैं।

स्याही—पूड़ी के बीचोंबीच में काला मसाला जमा रहता है इसे स्याही कहते हैं। यह मसाला गोलाकार रक्खा जाता है।

चांटी—पूड़ी के चारों ओर किनारे पर एक दोहरी पट्टी होती है जिसे चांटी कहते हैं। चांटी पर अंगुली के प्रहार के बोल निकलते हैं।

मैदान—स्याही और चांटी के बीच में जो स्थान होता है वह मैदान कहलाता है।

गजरा—पूड़ी के चारों तरफ चमड़े का गजरा होता है जिसमें छिद्र होते हैं। इन्हीं छिद्रों में होकर बध्धी को बांधा जाता है तथा गजरे पर ही प्रहार करके तबले को कसते या उतारते हैं।

गट्टे—तबले को चढ़ाने या उतारने के लिये लकड़ी के आठ गट्टे होते हैं। यह गट्टे बध्धी के बीच में लगे रहते हैं।

बध्धी—पड़ी को तबले पर कसने के लिये जो चमड़े की डोरी काम में लाई जाती है उसे बध्धी कहते हैं।

मुंडरी :—तबले के नीचे चमड़े या पतली रस्सी की एक कुंडरी बनाते हैं जिसे मुंडरी या कुंडरी कहते हैं मुंडरी से ही होकर बध्धी को कसते हैं।

बांये तबले अथवा डिग्गे के भी यही सब अंग होते हैं। केवल डिग्गा मिट्टी या किसी धातु का बना होता है तथा उसका घेरा दाहिने तबले के घेरे से बड़ा होता है। डिग्गे में दाहिने तबले की तरह लकड़ी के गट्टे नहीं होते हैं।

तबले का मिलाना

दाहिने तबले को अधिकतर षडज या पंचम स्वर से मिलाया जाता है। जिस राग में पंचम स्वर नहीं लगता उसमें दाहिना तबला मध्यम स्वर मे मिलाते हैं। बांये तबले को अधिकतर ठोक कर चढ़ा लिया जाता है। कभी कभी षडज स्वर से इसे मिलाते हैं।

तबले को चढ़ाने या उतारने के लिये हथौड़ी काम में लाई जाती है। सबसे प्रथम तबले के स्वर को बजा कर देख लिया जाता है फिर यह देखा जाता है कि जिस स्वर से उसे मिलाना है वह तबले के स्वर से ऊँचा है अथवा नीचा। यदि ऊँचा हुआ तो तबले के गट्टकों को नीचे की ओर ठोकते हैं जिससे तबले का स्वर ऊंचा होता है। तबले के गट्टकों को ठोकने के दो तरीके हैं:— पहला यह कि सब गिट्टको को तरतीब से एक के बाद एक करके ठोकते जाते हैं तथा दूसरा यह कि एक गिट्टक को ठोक कर उसके सामने वाले गिट्टक को ठोकते हैं और इस प्रकार सामने सामने

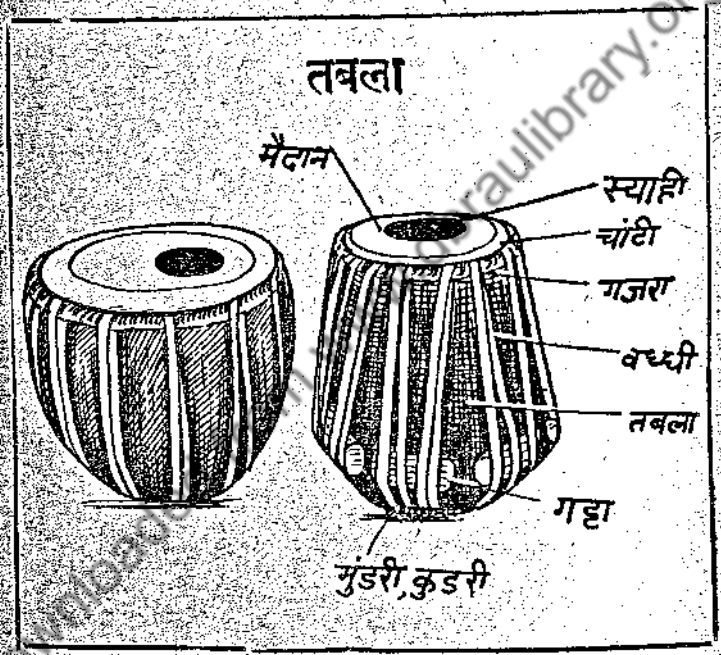
तबला
मैदान
स्याही
चांटी
गजरा
वध्री
तबला
गट्टा
मुंडरी/कुंडरी

को सब गिट्टकों को ठोक देते हैं। गिट्टकों को ठोकने के साथ दाहिने हाथ से तबले पर प्रहार करते रहते हैं जिससे तबले का स्वर मालूम पड़ता है। जब तबला निश्चित स्वर पर आ जाता है तो गिट्टकों को न ठोक कर गजरे पर प्रहार करते हैं। गजरे पर प्रहार करने से तबले को सही स्वर से मिलाने में सहायता होती है।

यदि तबले का स्वर ऊँचा हो और उसे नीचा करना हो तो प्रथम गिट्टकों को नीचे से ऊपर की ओर ठोकते हैं जिससे तबले का स्वर नीचा होता है। दाहिने हाथ से बराबर तबले के स्वर को बजाकर देखते हैं। कुछ कभी रहने पर गजरे के ऊपर से अथवा नीचे से प्रहार करके तबले को निश्चित स्वर से मिला लेते हैं।

बांये तबले को कसने के लिये उसके गजरे पर प्रहार किया जाता है।

तबले की उत्पत्ति

संगीत में ताल शब्द बहुत प्राचीन है कुछ लोग इस शब्द की उत्पत्ति पार्वती जी व शंकर जी से मानते हैं। ताल को बजाने के लिये प्राचीन काल में तबला का आविष्कार नहीं हुआ था। कहते हैं कि जिस समय वृत्रासुर राक्षस को शंकर भगवान ने मारा था तो उस आनन्दोत्सव में गणेश जी ने पृथ्वी पर गड्ढा खोदकर, उस पर वृत्रासुर की खाल मढ़कर बजाया था। इससे ताल वाद्य की उत्पत्ति के बारे में कुछ भास होता है।

प्राचीन काल में ताल को बजाने के लिये जो वाद्य प्रयोग में आते थे वह इस प्रकार हैं:—घट, दुन्दुभी, आडम्बर, वानस्पति, मृदंग, भेरी, डिमडिम इत्यादि। कुछ लोगों का विचार है कि प्राचीनकाल का दुर्दुर नामक वाद्य बहुत कुछ आधुनिक तबले से

मिलता है। बाद में चलकर मृदंग और पखावज का प्रचार अधिक हो गया। १३ वीं शताब्दि के लगभग ध्रुपद आदि गायनों की संगत मृदंग अथवा पखावज से ही की जाती थी।

संगीत के क्षेत्र में अमीर खुसरू (१३ वीं शताब्दी) का स्थान बहुत महत्वपूर्ण है। बहुत से विद्वानों का कहना है कि खुसरू साहब ने ही तबले का आविष्कार किया। कहते हैं आपने पखावज के दो हिस्से कर दिये और इस प्रकार तबले के दो रूपों (बाँया व दाँया) का आविष्कार हो सका। तबले के क्षेत्र में दूसरा महत्व-पूर्ण स्थान उस्ताद सुधार खाँ का आता है। आपने तबला-वादक में अनेक सुधार किये जो महत्वपूर्ण हैं। कुछ लोगों के विचार से यह तबले के सर्वप्रिय उस्ताद थे।

तबले के घराने

आधुनिक समय में तबला बजाने के विभिन्न घराने प्रचलित हैं। यह घराने तबला बजाने की विभिन्न शैलियों के आधार पर बने हैं। आधुनिक घराने इस प्रकार हैं :—(१) दिल्ली घराना (२) पूरब घराना (३) अजराड़ा घराना (४) बनारस घराना तथा (५) पंजाब घराना। उपरोक्त घरानों की तबला बजाने की शैली, बाज (बजौटी) कहलाती है।

(१) दिल्ली घराना और बाज

इस घराने की उत्पत्ति उस्ताद सुधार खाँ से होती है। आपके घराने के कल्लू खाँ, रोशन खाँ व तुल्लन खाँ प्रसिद्ध तबलिये हुये हैं। सुधार खाँ के लड़कों में घसीट खाँ और बुगरा खाँ प्रसिद्ध हुये। आधुनिक समय में दिल्ली घराने के प्रसिद्ध तबलिये

इस प्रकार हैं :—अहमदजान थिरकवा अमीर हुसैन, शमशुद्दीन खाँ, गुलाम हुसैन व मेरठ के हबीबउद्दीन खाँ।

दिल्ली के बाज के बजाने के लिये अधिकतर दो अंगुलियों का प्रयोग किया जाता है तर्जनी तथा मध्यम। इस बाज में चांटी का काम अधिक होता है। पेशकार, कायदे, रेले, गतें, मोहरे, मुखड़े आदि इस बाज में अधिक बजाये जाते हैं। तबले के बोलों में—'तिर', 'तिर किट' 'दिन गिन' या 'धिन गिन' आदि का प्रयोग अधिक होता है।

(२) पूरब का घराना और बाज

पूरब के घराने को हम दो भागों में बाँट सकते हैं :—(१) लखनऊ (२) फरुखाबाद।

लखनऊ का घराना व बाज :—लखनऊ घराने का आविष्कार उस्ताद बख्शू खाँ व भोदू खाँ ने किया। इनके वंश में मम्मू खाँ, मुहम्मद खाँ, मुन्ने खाँ, आदिब हुसेन खाँ आदि तबले के खलीफा कहे जाते थे।

दिल्ली बाज की तरह इसमें भी पेशकार कायदे, रेले, टुकड़े, गतें, परन, चक्करदार गत आदि बजाये जाते हैं। इस बाज में खुले बोलों व जोरदार बोलों का अधिक प्रयोग होता है जैसे—'धिट', 'तिर', 'धागेतिट', 'गदिगन', 'कडाँ' 'धा', 'धिर', 'धिर', आदि।

फरुखाबाद का घराना व बाज :—यह घराना उस्ताद हाजी खाँ के नाम से प्रसिद्ध हुआ। हाजी खाँ लखनऊ घराने के ही थे बाद में चलकर इमाम बख्श, घुन्नू खाँ, मुबारक अली, अमीर हुसेन, गुलाम हुसेन, उस्ताद थिरकवा आदि प्रसिद्ध हुये।

इसी वंश के उस्ताद नन्हे खाँ थे जो लखनऊ के दरबार में थे। नन्हे खाँ के लड़के उस्ताद मसीद खाँ हुये जो रामपुर के दरबार में थे तथा मसीद खाँ के पुत्र आजकल कलकत्ते के प्रसिद्ध तबलिये उस्ताद करामत हुसैन खाँ हैं।

फरुखाबाद बाज में भी लखनऊ बाज की तरह खुले व जोरदार बोलों का प्रयोग होता है।

अजराडा घराना और बाज

दिल्ली के उस्ताद सिताब खाँ के शिष्यों ने इस घराने को चलाया। अजराडा एक गाँव है जो मेरठ जिले में है। कल्लू खां व मीरु खां इसी गाँव के निवासी थे जो उस्ताद सिताब खां के शिष्य थे। बाद में चलकर—मुहमदी बख्श, काले खां, हस्सू खां व शम्मू खां प्रसिद्ध हुये। उस्ताद शम्मू खां के ही पुत्र प्रो० हबीबउद्दीन हैं।

दिल्ली बाज की तरह यह बाज भी बहुत मीठा है। इसमें चांटी का काम अधिक होता है तथा छोटे छोटे टुकड़े, कायदे पेशकार, रेले आदि अधिक प्रयोग में लाये जाते हैं। इस बाज में दाये व बांये दोनों हाथों के सुन्दर बोल बजाये जाते हैं। उदाहरण के लिये जैसे—धिन, धेत, धे धे नक, धारागिन, धड़ा धा आदि। इस बाज में आड़लय का काम भी खूब होता है।

बनारस का घराना और बाज

बनारस का घराना लखनऊ घराने से सम्बन्धित है। यहाँ के प्रथम तबलिये श्री रामसहाय थे। आप उस्ताद मोदू खाँ के

शिष्य थे। इस घराने में भैरों सहाय, बलदेव सहाय, दुर्गा सहाय आदि अधिक प्रसिद्ध हैं। आजकल श्री कंठे महराज, अनोखे लाल, सामता प्रसाद (गुदई महराज) आदि अधिक प्रसिद्ध हैं। श्री कंठे महराज के भतीजे श्री किशन महराज भी आजकल प्रसिद्ध हैं।

बनारस का बाज पूरब बाज की ही एक शाखा है। इस बाज में पेशकार, कायदे, परन आदि का अधिक प्रयोग होता है। लखनऊ बाज की तरह इसके बोल भी जोरदार व खुले होते हैं।

पंजाब का घराना और बाज

हमने देखा कि ऊपर लिखे घरानों का सम्बन्ध दिल्ली घराने से है, परन्तु पंजाब घराना एक स्वतन्त्र घराना है। इस घराने के हुसैन बख्श व फकीर बख्श प्रसिद्ध पखावजी थे। फकीर बख्श ने पखावज के बोलों को बंद करके तबले के बोलों का आविष्कार किया। बाद में इस घराने के—उस्ताद कादिर बख्श, करम इलाही खाँ, मलन खाँ व बम्बई के अल्ला रक्खा खाँ, अधिक प्रसिद्ध हुये।

इस बाज में पखावज के जोरदार व खुले बोलों की प्रधानता है। बड़ी बड़ी परने, गतें लयकारियों का आनन्द इस बाज में अधिक है इस बाज के विशेष बोल जो अन्य बाजों के बोलों से अलग हैं इस प्रकार से हैं:—

दुंग, दुंग,नग, धेटत इत्यादि।

———

सप्तम अध्याय

ताल-विभाग

संगीत में ताल का महत्वपूर्ण स्थान है। सारा संगीत ताल पर ही आधारित है। 'संगीत रत्नाकर' नामक पुस्तक में लिखा है:—

"गीतं वाद्यं तथा नृत्यं यतस्ताले प्रतिष्ठितम्"।

अर्थात गायन, वादन व नृत्य, ताल से ही सुशोभित हैं। नीचे ताल के पारिभाषिक शब्दों की व्याख्या की जाती है:—

ताल

गायन, वादन तथा नृत्य में समय नापने के पैमाने को ताल कहते हैं अर्थात ताल एक ऐसा माध्यम है, एक ऐसा साधन है जिससे गायन, वादन तथा नृत्य का समय नापा जाता है। ताल के दस प्राण माने गये है। प्राण के अर्थ अग से हैं। ताल के दस अंग इस प्रकार हैं:—

"कालो मार्ग: क्रियागानि ग्रहो जाति-कला-लया:।
यति-प्रस्तार कश्येति ताल प्राण दशस्मृता॥"

अर्थात ताल के दस प्राण—काल, मार्ग, क्रिया, अंग, ग्रह, जाति, कला, लय, यति और प्रस्तार हैं।

काल

गायन, वादन अथवा नृत्य इन तीनों कलाओं की क्रियाओं में जो समय लगता है उसे 'काल' कह कर पुकारते हैं। उदाहरण

लिये यदि कोई गायक आधा घटे तक गाता है तो यह समय 'काल' कहलावेगा। इस काल को विभागों में बांटते हैं और एक विभाग नापने का जो साधन होता है उसी को ताल कहते हैं।

(२) मार्ग :—ताल प्रारंभिक मात्रा से अंतिम मात्रा तक जिस ढंग से चलता है उसी को मार्ग कहते हैं। मार्ग का अधिक स्पष्टीकरण नहीं हो सका है परन्तु ताल की विभिन्न मात्राओं व विभागों के ढंग को मार्ग कहते हैं। मार्ग से यह मालूम पड़ता है ताल की मात्राओं का प्रमाण क्या है उसको ताली व भरी अथवा विभागों की क्या चाल है आदि। ग्रन्थों में कुछ मार्गों का उल्लेख मिलता है जैसे—ध्रुवमार्ग, दक्षिण मार्ग, चित्रमार्ग इत्यादि।

(३) क्रिया :—ताल को लगाने अथवा हाथों पर ताली देकर दिखाने की जो क्रिया की जाती है उसे ताल की क्रिया कहकर पुकारते हैं। हाथ, पर जब ताल लगाते हैं तो ताली और खाली दिखलाते हैं यही उसकी क्रिया कहलाती है।

(४) अंग :—ताल के विभिन्न विभाग ही उसके अंग कहलाते हैं। दक्षिणी अथवा कर्नाटकी पद्धति में तालों के विभाग अंग कहलाते हैं। उदाहरण के लिए ताल त्रिताल में ३ ताली व १ खाली है। इसलिये ताल त्रिताल में ४ विभाग अथवा ४ अंग होते हैं।

(५) ग्रह :—गीत का प्रारम्भ ताल के आवर्तन की जिस मात्रा से होता है उसे ग्रह कहते हैं। जिस प्रकार संगीत में ग्रह स्वर वह कहलाता है जिससे राग को प्रारम्भ करते हैं उसी प्रकार ताल में ग्रह उस मात्रा को कहते हैं जिससे गीत आरम्भ होता

है। अपने यहाँ कुल चार ग्रह ताल में माने जाते हैं :—सम, विषम, अतीत, अनागत।

जब गीत का आरम्भ ताल की पहिली मात्रा से होता है तब वह सम ग्रह कहलाता है।

जब गीत का आरम्भ खाली की मात्रा पर होता है तब वह विषम ग्रह कहलाता है।

अतीत माने बीता हुआ अर्थात् ताल का सम निकल जाने पर फिर सम दिखाने को 'अतीतसम' कहते हैं।

अनागत के अर्थ हैं बाद में आने वाला अर्थात् गायक अथवा वादक जब ताल के सम के पहले ही सम दिखलाता है तो वह अनागत कहलाता है।

ध्रुपद धमार आदि गीतों में इन चार ग्रहों का प्रयोग किया जाता है।

(६) जाति :—ताल की जातियों का प्रयोग कर्नाटकी ताल पद्धति में होता है। उनकी ताल पद्धति में तालों की ५ विभिन्न जातियाँ होती हैं जैसे—चतस्र, त्रिस्र, मिश्र, खंड और संकीर्ण। इन जातियों के अनुसार उनके ताल की मात्रायें भी बदल जाती हैं। कर्नाटकी ताल पद्धति समझाई जा चुकी है। हिन्दुस्तानी ताल पद्धति में ताल की जाति का स्पष्टीकरण नहीं हो पाया है।

(७) कला :—ताल को तबले पर अथवा ताल-वाद्यों पर बजाने की जो विभिन्न शैलियाँ हैं उन्हें कला कहते हैं। कला के अर्थ रीति अथवा शैली से है। आधुनिक समय में ताल-वाद्य बजाने के विभिन्न घराने कला के अन्तरगत ही आते हैं।

(८) लय :—गायन, वादन अथवा नृत्य की क्रियाओं में जो समय लगता है (काल) उस समय की चाल या गति को

लय कहते हैं। लय एक समानान्तर चाल होती है। इसके तीन प्रकार होते हैं :—

(१) विलंबित लय।
(२) मध्य लय।
(३) द्रुत लय।

विलंबित लय :—बहुत धीमी चाल, जिसकी मात्रायें अधिक समानान्तर पर होती है, विलंबित लय कहलाती है। इस लय को 'ठाह' लय भी कहते हैं। गायन में बड़े ख्याल, ध्रुपद, धमार आदि इसी लय में गाये जाते हैं। इस लय के ताल इस प्रकार होते हैं—झूमरा, आड़ाचौताल, तिलवाड़ा, विलंबित एकताल इत्यादि।

मध्यलय :—साधारण लय, जो न अधिक धीमी और न अधिक तेज होती है मध्यलय कहलाती है। मध्यलय को तुलना हम घड़ी की हर सेकिन्ड की टिक-टिक की चाल से कर सकते हैं। गायन में छोटा ख्याल, गीत, भजन आदि इसी लय में गाये जाते हैं। इस लय की ताल जैसे—त्रिताल, झपताल, एकताल दादरा आदि हैं।

द्रुतलय :—मध्यलय से दुगुनी जल्दी लय को द्रुत लय कहते हैं। गायन में छोटे ख्याल, तराने आदि इसी लय में गाये जाते हैं। इस लय की ताल जैसे—जल्द त्रिताल, जल्द एकताल आदि हैं।

(९) **यति :**—यति का स्पष्टीकरण नहीं हो सका है। परन्तु लय के नापने की रीति को यति कहा जाता है। यति के पाँच

प्रकार माने जाते हैं—(१) समा (२) गोपुच्छा (३) मृदंगा (४) पिपिलिका (५) श्रोतागता।

(१०) प्रस्तार :—ताल वाद्य पर ताल के ठेके के उपरान्त टुकड़े, परन, कायदे, पेशकारा आदि से उसे बढ़ाते हैं। यही ताल का 'प्रस्तार' करना कहलाता है।

मात्रा

लय अथवा ताल नापने के साधन को मात्रा कहते हैं। मात्रा एक ऐसी इकाई है जिसके द्वारा ताल की पूर्ति होती है। मात्राओं के समूह से ही ताल की उत्पत्ति होती है। यही मात्रायें विलंबित लय में अधिक समानान्तर पर, मध्य लय में साधारण समानान्तर पर तथा द्रुत लय में कम समानान्तर पर होती हैं। मात्राओं से ही ताल बनता है, जैसे १० मात्राओं के समूह से झप ताल बनता है। साधारण लय में मात्राओं की तुलना घड़ी की हर सेकिन्ड की टिक-टिक से की जा सकती है।

आवर्तन

किसी ताल की सम्पूर्ण मात्राओं के समूह को आवर्तन कहते हैं, अर्थात् एकबार किसी ताल की पूरी मात्राओं का कहना उस ताल का एक आवर्तन हुआ। एक आवर्तन के बाद ताल का दूसरा आवर्तन होता है और इसी प्रकार क्रम चलता रहता है। उदाहरण के लिये ताल झप का एक आवर्तन इस प्रकार होगा :—

ठेका

किसी ताल के एक आवर्तन के बोलों के समूह को, जो ताल-वाद्य पर बजाये जाते हैं, ठेका कहते हैं। उदाहरण के लिये ताल त्रिताल का ठेका इस प्रकार है :—

धा धिं धिं धा	धा धिं धिं धा	धा तिं तिं ता	ता धिं धिं धा
×	२	०	३

सम

जिस मात्रा से ताल आरम्भ होता है अथवा जिस मात्रा से ताल किसी वाद्य पर बजना आरम्भ होता है, उस मात्रा को उस ताल का सम कहते हैं। बहुधा ताल की पहली मात्रा पर सम होता है। सम पर एक विशेष प्रकार का जोर दिया जाता है जिससे अन्य मात्राओं में उसे पहिचानना आसान हो जाता है। गायन में भी गायक गीत का सम दिखाने के लिये जोर लगाकर अथवा सिर हिलाकर उसे स्पष्ट करता है।

खाली

सम के बाद ताल में दूसरा स्थान खाली का है। जिस मात्रा पर ताली नहीं पटकी जाती अथवा ताल के जिस विभाग को दिखाने के लिये हाथ पर ताली न देकर दूर कर देते हैं इसे खाली विभाग कहते हैं। अधिकतर खाली का स्थान ताल की मात्राओं के लगभग बीच में पड़ता है जैसे ताल त्रिताल में १६ मात्रायें होती हैं तथा खाली का विभाग ९ वीं मात्रा पर है।

Downloaded from www.dbraulibrary.org.in

ताली

सम के अतिरिक्त ताल में जिस-जिस मात्राओं पर तालियाँ पड़ती हैं वे ताली अथवा भरी कहलाती हैं। उदाहरण के लिये ताल त्रिताल में पहली मात्रा पर सम है तथा ६ वीं मात्रा पर खाली है। इसलिये ५ वीं व १२ वीं मात्राओं पर इस ताल की तालियाँ अथवा भरी हैं।

लयकारियाँ

संगीत में विलंबित, मध्य व द्रुत लयों के अतिरिक्त कई प्रकार की लयकारियाँ होती हैं। गायन में लयकारियों का काम ध्रुपद, धमार आदि में देखने को मिलता है। उदाहरण के लिये जैसे—ठाह, दुगुन, तिगुन, चौगुन, आड़, अठगुन, सवाई इत्यादि। नीचे कुछ लयकारियों की व्याख्या की जाती है :—

ठाहलय :—जिस लय में एक मात्रा पर एक मात्रा अथवा शब्द कहा जाय, उसे ठाह लय कहते हैं। कहने का अर्थ यह है कि ठाह लय में प्रत्येक मात्रा पर ताली देते जाते हैं जैसे :—

१, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ।

दुगुन :—ठाहलय में जिस प्रकार एक मात्रा में एक अंक कहा जाता है, दुगुन की लय में समानान्तर पर एक मात्रा में दो अंक बोलते हैं। यह लय ठाह लय की दुगुनी हैं जैसे :—

१, २ ३, ४ ५, ६ ७, ८

तिगुन :—ठाह लय की एक मात्रा में तीन अंक समानान्तर पर बोलना तिगुन की लय कहलाती है। इसे लिखने के लिये एक मात्रा में तीन मात्रायें लिखते —

१२३ ४५६ ७८९ १०१११२

चौगुन :—ठाह लय की एक मात्रा में चार अंक को कहना चौगुन की लय कहलाती है। इस लय में एक मात्रा में चार मात्रा बोलना पड़ता है जैसे—

१२३४ ५६७८

इसी प्रकार पंचगुन, छः गुन, अठगुन आदि लयकारियाँ हो सकती हैं। नीचे कुछ कठिन लयों को दिया जाता है :—

आड़ :—आड़ के अर्थ है तिरछी। यहाँ पर आड़ के अर्थ डेढ़गुन से होता है। डेढ़गुन माने एक मात्रा में १½ मात्रायें कहना। सरलता के लिये हम कह सकते हैं कि २ मात्राओं में तीन मात्राओं का बोलना आड़ की लय है। दो मात्राओं में तीन के लिये प्रत्येक मात्रा पर एक एक अवग्रह जोड़ते जाते हैं। इस प्रकार ३ मात्राये, ६ अंको में हो जाती हैं। अब इन ६ अंको को २ मात्राओं में करने के लिये एक मात्रा में ३ अंक कहते हैं जैसे:—

१२ ३३ ४५ ५६

तिगुन की लय में हम एक मात्रा में ३ मात्रा बोलते हैं परन्तु आड़ की लय में हम २ मात्राओं में ३ मात्रायें बोलते हैं। इसलिये यह स्पष्ट है की आड़ लय, तिगुन लय की आधी है।

आड़ की उल्टी (३ मात्राओं में २ मात्रा बोलना)

३ मात्राओं को २ मात्राओं में इस प्रकार कहेंगे:—

१ऽ ऽ२ ऽऽ ३ऽ ऽ४ ऽऽ

३ मात्राओं में ४ मात्रायें बोलना:—

३ मात्राओं में ४ मात्राओं को इस प्रकार कहेंगे:—

१ऽऽ२ ऽऽ३ऽ ऽ४ऽऽ

४ मात्राओं में ३ मात्रायें बोलना (पौनगुन)

पौन गुन को इस प्रकार कहेंगे:—

१ऽऽ ऽ२ऽ ऽऽ३ ऽऽऽ

कुआड़ लय:—सवागुन को कुआड़ लत कहते हैं। सवागुन के अर्थ हुये १ मात्रा में १$\frac{१}{४}$ मात्रा बोलना। सरलता के लिये हम कह सकते हैं कि ४ मात्रा में ५ मात्रा बोलना सवागुन अथवा कुआड़ लय कहलाती है। कुआड़ लय (४मात्रा में ५ मात्रा) को इस प्रकार कहेंगे:—

१ऽऽऽ२ ऽऽऽ३ऽ ऽऽ४ऽऽ ऽ५ऽऽऽ

कुछ विद्वानों के अनुसार आड़ की आड़ को कुआड़ लय कहते हैं। आड़ की आड़ अर्थात $\frac{३}{२}\times\frac{३}{२}=\frac{९}{४}$ या ४ मात्राओं में

६ मात्रायें कहना कुआड़ लय हुयी। ४ मात्राओं में ६ मात्रायें इस प्रकार कहेंगे:—

१ऽऽऽ२ऽऽऽ३ ऽऽऽ४ऽऽऽ५ऽ ऽऽ६ऽऽऽ७ऽ३ ऽ८ऽऽऽ९ऽऽऽ

बिआड़ लय:—पौने दो गुन को लय को बिआड़-लय कहते हैं। पौने दो गुन के अर्थ हुये ४ मात्राओं में ७ मात्राये कहना। एक मात्रा में पौने दो मात्रा या $1\frac{3}{4}$ मात्रा कहना ही बिआड़लय है। इसे इस प्रकार कहेंगे :—

१ऽऽ२ऽऽ ऽ३ऽऽऽ४ऽ ऽऽ५ऽऽऽ६ ऽऽऽ७ऽऽऽ

कुछ विद्वानों के मतानुसार कुआड़ को आड़ को बिआड लय कहते हैं। कुआड़ की आड़ $= \frac{3}{2} \times \frac{3}{2} = \frac{9}{4}$ अर्थात ८ मात्राओं में २७ मात्राओं को कहना बिआड़लय है।

तबला-शास्त्र

ठेके की किस्में:—ताल के विभागों पर कुछ असर न डालते हुये ताल के ठेके को विभिन्न रूपों के बोलों से बजाने को ठेके की किस्में बदलना कहते हैं। उदाहरण के लिये ताल कहरवा की किस्में इस प्रकार होंगी "धातू नातू नत धिन" या "धागे त्तिट नागे त्तिट" आदि अथवा त्रिताल के बोल 'ना धी धी ना ना' न होकर "ऋक धिं धिं ना" या "धा ऋक धिं ना" हो सकते हैं।

तीहा:—किसी टुकड़े के बोलों को एक ही प्रकार से तीन बार बना कर सम पर आना तीहा या तिहाई कहलाता है। तीहा

Downloaded from www.dbraulibrary.org.in

दो प्रकार के होते है एक तो वे जिनके तीन टुकड़ों के पहले दो टुकड़ों पर रुकते नहीं हैं व एक वे जिनके टुकड़ों में पहले दो टुकड़ों पर दम देते हैं यानी रुकते हैं। उदाहरण के लिए—

(१) तिर किट तक तिर। किट तक तिर किट। धा – बेदम
० ३ ×

दार तीहा

(२) त्तिता तिटकिट धा तित्ता। तिटकिट धा तित्ता तिटकिट।
० ३

धा दमदार तीहा
×

मुखड़ा व मोहरा—मुखड़ा व मोहरा वे टुकड़े हैं जिनको संगत करते समय बजा कर सम पर आया जाता है। मुखड़ा व मोहरा में केवल यह अन्तर है कि मुखड़ा तो गायन के शुरू में बजाया जाता है जब कि उसे बजा कर सम पर आया जाता है और मोहरा संगत के बीच में बार-बार सम पर आने के लिये तबले आदि पर बजाया जाता है। मुखड़ा तिहा के साथ भी आता है।

मुखड़ा—धि त्ता धेधे तिट | तिट तिरकिट तक ता३ तिरकिट
× २

धा तिरकिट तकता३ तिरकिट | धा तिरकिट तक्ता३ तिरकिट
० ३

धा
×

मोहरा धिर किट धिन ना | किड़ा३न् नागे तिट | धा
० ३ ×

कायदा—कायदा बोलों का वह समूह है जो एक या एक से अधिक अवर्तनों का होता है। इसमें यह विशेषता होती है कि इसके बोल ताल के विभागों के अनुसार ही विभाजित होते हैं और इस प्रकार ताल पर ताली व खाली पर खाली पड़ती है। कायदे के पलटने पर ही पल्टे बनते हैं।

कायदों का प्रयोग तबला सोलो के आरम्भ में होता है।

धा	धा	तिर	किट	धा	धा	तू	ना	ता	ता	तिर	किट	धा	धा	तू	ना
×		⌣	⌣	२				०		⌣	⌣	३			

पल्टा—कायदे के बोलों को पलटने से पल्टे बनते हैं। इसमें भी ताल का रूप बिगड़ने नहीं पाता पर पलटों में यह आवश्यक नहीं है कि भरी के स्थान पर भरी और खाली के स्थान पर खाली पड़े। उदाहरण के लिये जैसे—

धा	धा	तिर	किट	तिर	किट	धा	धा	ता	ता	तिर	किट				
×		⌣	⌣	२				०		⌣	⌣				
तिर	किट	धा	धा												
⌣	⌣	३													

उठान—उठान जोरदार बोलों का वह समूह है जो अधिकतर नाच के पूर्व अथवा ठेका भरने के पूर्व लगाया जाता है। सोलो प्रस्तुत करने के पहिले भी इसका प्रयोग करते हैं।

ति	त्ता	८	तक		तक	तक	तिर	किट			
×			⌣		२		⌣	⌣			
ति	त्ता	८	तक		तक	तक	तिर	किट			
०			⌣		३		⌣	⌣			

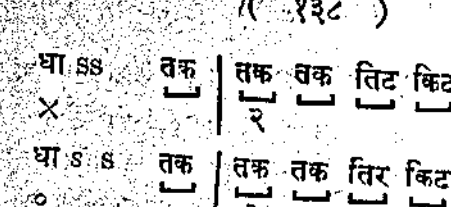

पेशकार—अधिक सुन्दर और कठिन कायदों को पेशकार कहते हैं। कायदे की तरह इस में भी ताल का रूप बिगड़ नहीं पाता। इसके भी पल्टे होते हैं। पेशकार कठिन वज़नदार होने के कारण जल्द बजाने में मुश्किल पड़ते हैं और इसलिये इन पर बहुत अभ्यास की आवश्यकता पड़ती है।

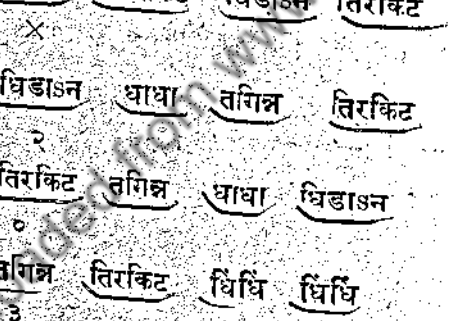

परन :—जोरदार बोलों के ऐसे टुकड़े जो कम से कम दो आवर्तनों में या कितने भी अधिक आवर्तनों में चल सकें, परन कहलाते हैं। परन के बोल दोहराये जाते हैं तथा इसमें लय का आनन्द आता है। इसके बोलों के लिये खुला हुआ हाथ तथा तैयार हाथ काम करता है कारण परन के बोल पखावज पर ही

ठीक बजाये जा सकते हैं। परन अधिकतर तीहा लेकर समाप्त की जाती है। उदाहरण के लिये जैसे—

धा	तिर	किट	तक	धा	तिर	किट	तक
×				२			
धा	तिर	किट	तक	तू	ता	किट	तक
०				३			
ता	तिर	किट	तक	ता	तिर	किट	तक
×				२			
धा	तिर	किट	तक	तू	ता	किट	तक
०				३			
धा	तिर	किट	तक	धा	s	धा	तिर
×				२			
किट	तक	धा	s	धा	तिर	किट	तक	धा
०				३				×

गत :—एक विशेष प्रकार के बोलों के संग्रह को जिसके बोल परन से कुछ हलके होते हैं तथा जिसके बोल दून और चौगुन में बजाये जाते हैं, गत कहते हैं। उदाहरण के लिये जैसे—

धागे	तिट	धागे	तिर	किट	तुना	कता	धागे
×				२			
तिर	किट	तूना	कता	धिना	तिर	किट	तागि
०				३			
तिर	तागि	तिर	किट	तिर	किट	तूना	कता
×				२			

Downloaded from www.dbraulibrary.org.in

धागे तिर किट तूना | कत्ता धिना तिर किट | धा
० ३ ×

रेला :—पल्टों को सुन्दर ढंग से बार-बार बजाने को रेला कहते हैं। रेला बार बार दुगुन, चौगुन, अठगुन आदि लायों में बजाया जाता है। इसमें अभ्यास की आवश्यकता अधिक पड़ती है। उदाहरण के लिये जैसे—

धिर धिर धिड़ नग | धिर धिर धिड़ नग
× २

धा तिर किट धिर | धिर धिर धिड़ नग
० ३

धी नक तिर किट | धगे तिर धिड़ नग
× २

नू ता किड़ नग | तिर किट किड़ नग
० ३

लग्गी :—लग्गी वे बोल हैं जो छोटे तालों में सुन्दरता के लिए बजाये जाते हैं। जिस प्रकार त्रिताल, एकताल आदि तालों में कायदे होते हैं उसी प्रकार दादरा, कहरवा आदि छोटे तालों में लग्गी का प्रयोग होता है। उदाहरण के लिए—

धाकड़ा नधा तुन्ना | ताकड़ा नधा तुन्ना
× ०

www.gurukulkangri.com www.gurukulkangri.com

तालों का वर्णन

नीचे कुछ प्रमुख तालों के ठेके तथा उनका विवरण दिया जाता है। इन तालों में प्रयोग होने वाले चिन्ह इस प्रकार हैं :—

× — सम ।
० — खाली ।
ऽ — अवग्रह ।
धागे —एक मात्रा में दो बोल कहना ।
धागेतिट—एक मात्रा में चार बोल कहना ।
तालियों के स्थान पर तालों की संख्या ।

१—ताल-कहरवा

इस ताल में ४ मात्रायें होती हैं १ विभाग होता है, पहली मात्रा पर सम होता है ।

मात्रा—	१	२	३	४
बोल—	धगि	नति	नक	धिन
ताल—	×			

कुछ लोग ताल कहरवा में ८ मात्रायें मानते हैं। जो इस प्रकार से हैं:—

मात्रा—	१	२	३	४	५	६	७	८
बोल—	धा	गि	न	ति	न	क	धि	न
ताल—	×		२		०		३	

Downloaded from www.dsaulibrary.org.in

२—ताल-दादरा

६ मात्रायें होती हैं, ३–३ मात्राओं पर विभाग बनते हैं इसलिये दो विभाग होते हैं। एक ताली और एक खाली, पहली मात्रा पर सम तथा ४ थी मात्रा पर खाली।

मात्रा—	१	२	३	४	५	६
बोल—	धा	धी	ना	धा	ती	ना
ताल—	×			०		

३—ताल-तीवरा

७ मात्रायें होती हैं, ३ विभाग होते हैं जो ३–२–२ मात्राओं के होते हैं। पहली पर सम और ४ थी व ६ वीं पर दूसरी और तीसरी तालियाँ पड़ती हैं। खाली नहीं होती।

मात्रा—	१	२	३	४	५	६	७
बोल—	धा	दिं	ता	तिट	कत	गद	गिन
ताल—	×			⌊	⌊	⌊	⌊
				२		३	

४—ताल-रुपक

७ मात्रायें होती हैं, २ विभाग होते हैं जो ३–२–२ मात्राओं के होते हैं। पहला विभाग खाली व बाद के दो भरे होते हैं। पहली मात्रा पर सम व खाली पड़ती है तथा ४ थी और ६ वीं पर तालियाँ पड़ती हैं।

मात्रा—	१	२	३	४	५	६	७
बोल—	ती	ती	ना	धी	ना	धी	ना
ताल—	०			२		३	
	×						

downloaded from www.dbraulibrary.org

(५) ताल—धुमाली

१८ मात्रायें होती हैं, ४ विभाग होते हैं जो २-२ मात्राओं पर पड़ते हैं। तीन ताली व एक खाली, पहली मात्रा पर सम, पाँचवीं पर खाली तथा तीसरी और सातवीं भरी होती है।

मात्रा—	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८
बोल—	धि	धि	धा	ति	तक	धि	धागे	तक	धा	गे	तक	धा	गे	तक	धा	गे	तक	धि
ताल—	×		२		०		३											

(६) ताल—झप

१० मात्राये होती हैं, ४ विभाग होते हैं जो २-३-२-३ मात्राओं के होते हैं ३ ताली एक खाली, पहली मात्रा पर सम छटवीं पर खाली तथा तीसरी व आठवीं मात्राओं पर तालियाँ होती हैं।

मात्रा—	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
बोल—	धी	ना	धी	धी	ना	ती	ना	धी	धी	ना
ताल—	×		२			०		३		

(७) ताल—सूल

१० मात्रायें होती हैं, ४ विभाग जो २-२ मात्राओं पर पड़ते हैं। ३ ताली व २ खाली, पहली मात्रा पर सम तीसरी और नवीं पर खाली तथा पाँचवीं व सातवीं पर तालियाँ होती हैं।

मात्रा—	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
बोल—	धा	धा	दि	ता	किट	धा	तिट	कत	गद्	गिन
ताल—	×		०		२		२		०	

Downloaded from www.dbraulilibrary.org.in

(८) एकताल

१२ मात्रायें होती हैं, ६ विभाग जो २-२ मात्राओं पर पड़ते हैं। ४ ताली २ खाली होती हैं। पहली पर सम, तीसरी और सातवीं मात्रायें पर खालियाँ तथा पांचवी, नवीं व ग्यारहवीं पर तालियाँ।

मात्रा—	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
बोल—	धि	धि	धा	त्रक	तू	ना	क	त्ता	धा	त्रक	धि	ना
ताल—	×		०		२		०		३		४	

(९) चारताल

१२ मात्रायें होती है, ६ विभाग जो २-२ मात्राओं पर पड़ते हैं। ४ ताली व २ खाली। पहली मात्रा पर सम, तीसरी और सातवीं पर खाली तथा पाँचवीं नवीं व ग्यारहवीं पर तालियाँ।

मात्रा—	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
बोल—	धा	धा	दि	ता	किट	धा	दि	त	किट	तक	गद	गिन
ताल—	×		०		२		०		३		४	

(१०) ताल— दीपचंदी

१४ मात्रायें होती हैं ४ विभाग जो ३-४-३-४ मात्राओं के होते हैं, ३ ताली व एक खाली। पहली पर सम, आठवीं पर खाली और चौथी तथा ग्यारहवीं पर तालियां।

मात्रा—	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
बोल—	धा	धि	ऽ	धा	धा	ति	ऽ	ता	ति	ऽ	धा	धा	धि	ऽ
ताल—	×			२				०			३			

(११) ताल—त्रिताल

१६ मात्रायें, ४ विभाग जो ४-४ मात्राओं के होते हैं। ३ ताली १ खाली, पहली मात्रा पर सम नवीं मात्रा पर खाली तथा पांचवीं और तेरहवीं पर तालियाँ।

मात्रा—	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
बोल	धा	धि	धि	धा	धा	धि	धि	धा	धि	ति	ति	ता	ता	धि	धि	धा
ताल—	×				२				०				३			

(१२) ताल-धमार

१४ मात्रायें होती हैं, ४ विभाग होते हैं जो ५—२—३—४ मात्राओं के होते हैं। ३ ताली एक खाली। १ ली पर सम ८ वीं पर खाली तथा ६ वीं मात्रा और ११ वीं पर तालियाँ पड़ती हैं।

मात्रा—	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
बोल—	क	धि	ट	धि	ट	धा	ऽ	ग	ति	ट	ति	ट	ता	ऽ
ताल—	×					२		०			३			

(१३) ताल-आड़ा चौताल

१४ मात्रायें, ७ विभाग जो २-२ मात्राओं के हैं। ४ ताली और ३ खाली, १ ली पर सम ५ वीं ९ वीं १३ वीं मात्राओं

पर खालियाँ तथा ३ री ७ वीं और ११ वीं मात्राओं पर तालियाँ पड़ती हैं।

मात्रा—	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
बोल—	धी	तिरकिट	धी	ना	तू	ता	क	त्ता	तिरकिट	धो
ताल—	×		२		०		३		०	

११	११	१३	१४
ना	धी	धी	ना
४		०	

[१४] ताल-झूमरा

१४ मात्रायें होती हैं, ४ विभाग होते हैं जो ३-४, ३-४ मात्राओं के होते हैं। ३ तालो और १ खाली, १ ली मात्रा पर सम व ९ वीं पर खाली तथा ४थीं व ११ वीं मात्राओं पर तालियाँ होती हैं।

मात्रा—	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
बोल—	धीं	धीं	तक	धीं	धीं	धागे	तिरकिट	तीं	तीं	तक
ताल—	×			२				०		

११	१२	१३	१४
धीं	धीं	धागे	तिरकिट
३			

[१५] ताल-तिलवाड़ा

१६ मात्राएं होती हैं, ४ विभाग जो ४-४ मात्राओं के होते हैं। ३ तालो और १ खाली। १ ली मात्रा पर सम ९ वीं

ात्रा पर खाली। ५ वीं व १३ वीं मात्राओं पर तालियाँ
ड़ती हैं।

मात्रा—१	२	३	४	५	६	७	८
बोल—धा	तिरकिट	धीं	धीं	धा	धा	तीं	तीं
ताल—×				२			

९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
ता	तिरकिट	धीं	धों	धा	धा	धीं	धीं
०				३			

[१७] ताल-जत

जत ताल १६ मात्राओं का होता है जो ठुमरियों में प्रयोग
किया जाता है। आजकल इसका कम प्रयोग होता है। कोई कोई
से १६ मात्रा को दीपचंदी भी कहता है। इसके विभाग आदि
त्रताल की तरह होते हैं।

मात्रा—१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
बोल—धा	ऽ	धीं	ऽ	धा	धा	तीं	ऽ	ता	ऽ	तीं	ऽ
ताल—×				२				०			

१३	१४	१५	१६
धा	धा	धीं	ऽ
३			

[१७] ताल-पंजाबी

इस ताल में १६ मात्राय होती हैं, चार विभाग, २ ताली १ खाली
१ली मात्रा पर सम ९ वीं मात्रा पर खाली तथा ५ वीं व १३ वीं

मात्राओं पर तालियाँ। यह ताल ठुमरी के साथ बजाया जाता है।

मात्रा—१	२	३	४	५	६	७	८
बोल—धा	गधो	sक	धा	धा	गधो	sक	धा
ताल—×				२			

९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
धा	गती	sक	ता	धगि	नधी	sक	धा
०				३			

(१८) ताल-टप्पा

इस ताल में भी पंजाबी की तरह १६ मात्रायें होती हैं तथा उसी प्रकार विभाग होते हैं। क्योंकि यह ताल टप्पा गायन में बजाया जाता है इसलिये इसे टप्पा ताल कह कर पुकारते हैं।

मात्रा—१	२	३	४	५	६	७	८
बोल—ना	sधीं	sक	धीं	ना	sधीं	sक	धीं
ताल—×				२			

९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
न	sती	sक	ती	ना	sधि	sक	धीं
०				३			

[१९] ताल-गजझंपा

इस ताल में १५ मात्रायें होती हैं। ४-४-४-३ मात्राओं पर विभाग होते हैं। १ ली मात्रा पर सम ९ वीं पर खाली तथा

वीं व १३ वीं मात्राओं पर तालियाँ पड़ती हैं। इस प्रकार ३ ताली एक खाली होती है।

मात्रा—	१	२	३	४	५	६	७	८
बोल—	धा	धिन	नक	तक	धा	धिन	नक	तक
ताल—	×				२			

९	१०	११	१२	१३	१४	१५
धिन	नक	तक	किट	तक	गद	गिन
०				३		

[२०] ताल-शिखर

कुल १७ मात्रायें होती हैं। ६-६-२-३ मात्राओं के विभाग होते हैं। १ ली पर सम व ७ वीं पर खाली तथा १३ वीं व १५ वीं मात्राओं पर तालियाँ पड़ती हैं। इस प्रकार ३ ताली और एक खाली होती है।

मात्रा—	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
बोल	धा	त्रक	धिन	नक	धुं	गा	धिन	नक	धुम	किट	तक	धेत
ताल—	×						०					

१३	१४	१५	१६	१७
धा	तिट	कत	गदि	गिन
२		३		

[२१] ताल-मत्त

कुल १८ मात्रायें होती हैं। २-२ मात्राओं के विभाग होते हैं ६ ताली व ३ खाली होती हैं। १ ली पर सम ३ री, ६ वीं और १७ वीं

Downloaded from www.shrauthlibrary.org

पर खालियाँ तथा ५ वीं, ७ वीं, ११ वीं, १३ वीं और १५ वीं मात्राओं पर तालियाँ पड़ती हैं।

मात्रा—	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
बोल	धा	ड	धि	ड	न	क	धि	ड	न	क	ति	ट	क	त
ताल—	×		०		२		३		०			४	५	

१५	१६	१७	१८
ग	द	गि	न
६		०	

तालों की दुगुन, तिगुन, चौगुन व आद लिखना

किसी भी ताल को विभिन्न लयों में कहा या लिखा जा सकता है। नीचे उदाहरण के लिये ताल झपताल को विभिन्न लयों में लिख कर बतलाया जाता है :—

दुगुन :—झपताल के एक अवर्तन में ही उसके बोल दो बार कहना दुगुन अथवा दून कहलाती है।

मात्रा—	१	२	३	४	५
बोल—	धीना	धीधी	नाती	नाधी	धीना
ताल—	×		२		

६	७	८	९	१०
धीना	धीधी	नाती	नाधी	धीना
०		३		

तिगुन :—झपताल के एक आवर्तन में ही उसके बोल तीन बार कहना तिगुन की लय कहलाती है।

मात्रा—	१	२		३	४	५			
बोल—	धीनाधी	धीनाती		नाधीधी	नाधीना	धीधीना			
ताल—	×			२					
	६	७		८	९	१०			
	धीनाधी	धीनाधी		नाधीधी	नातीना	धीधीना			
	०			३					

चौगुन :—झपताल के एक आवर्तन में ही उसके बोल चार बार कहना चौगुन की लय कहलाती है।

मात्रा—	१	२		३	४	५			
बोल—	धीनाधीधी	नातीनाधी		धीनाधीना	धीधीनाती	नाधीधीना			
ताल—	×			२					
	६	७		८	९	१०			
	धीनाधीधी	नातीनाधी		धीनाधीना	धीधीनाती	नाधीधीना			
	०			३					

आड़—झपताल के दो आवर्तनों में उसके आवर्तन के बोलों को तीन बार कहना आड़ लय कहलाती है। तिगुन की लय

Downloaded from www.dbraulibrary.org.in

में एक आवर्तन में तीन आवर्तन के बोल कहना या लिखना पड़ता है परन्तु आड़ लय में वही तीन आवर्तनों के बोल एक आवर्तन में न कह कर दो आवर्तनों में कहते हैं। अतएव हमको यह मालूम हुआ कि आड़लय तिगुन लय की आधी है। झपताल की आड़ इस प्रकार होगी:—

मात्रा	१	२	३	४	५
बोल	धीsना	sधीs	धीsना	sतीs	नाsधो
ताल	×		२		
	६	७	८	९	१०
	sधीs	नाsधी	sनाs	धीsधो	sनाs
	०		३		
मात्रा	१	२	३	४	५
बोल	तीsना	sधीs	धीsना	sधीs	नाsधी
ताल	×		२		
	६	७	८	९	१०
	sधीs	नाsती	sनाs	धीsधी	sनाs
	०		३		

इसी प्रकार प्रत्येक ताल को विभिन्न लयों में लिखा जा सकता है तथा मुह से बोल पढ़ कर व हाथ से ताल देते हुये इन विभिन्न लयों को आसानी से कहा जा सकता है।

संगीत में ताल का महत्व

गायन, वादन तथा नृत्य में ताल का प्रमुख स्थान है। संगीत में यह आनन्दोत्पत्ति का साधन है। बिना ताल के संगीत पूर्ण नहीं कहा जा सकता तथा संगीत की रसानुभूति भी बहुत कुछ ताल पर अवलम्बित है। इसलिये ताल का ज्ञान प्रत्येक संगीतज्ञ

Digitized by www.dsraulibrary.org

के लिये अनिवार्य है। बिना ताल के ज्ञान के वह पूर्णरूपेण संगीतज्ञ नहीं कहा जा सकता। शास्त्रकारों ने भी ताल का महत्व इस प्रकार बतलाया है:—

यस्तु ताल न जानति गायको न च वादकः।
तस्मात् सर्व प्रयत्नेन कार्य ताला व धारणम्॥

अर्थात् जो ताल नहीं जानता है वह न तो गायक है न वादक है इसलिये इसका ज्ञान अवश्य ही परिश्रम करके प्राप्त कर लेना चाहिये। ताल को संगीत की व्याकरण कहा जाता है Tal is the grammar of music जिस प्रकार किसी भाषा को पढ़ने के लिये उसको व्याकरण की आवश्यकता पड़ती है उसी प्रकार संगीत में ताल का महत्व है।

ताल का सम्बन्ध लय से है और लय संगीत का आधार है। संगीत में लय का महत्व बतलाते हुये कहा है कि "श्रुतिर्माता लयः पिता" अर्थात् संगीत की यदि श्रुति माता है तो लय पिता है। लय संगीत का वह माध्यम है जिससे आनन्द तथा रस का श्रोत दूसरों तक पहुँचता है यदि लय को माध्यम मान कर हम संगीत का विभाजन करें तो तीन विभाग किये जा सकते हैं।

(१) वह संगीत जो केवल लय पर आधारित है। इस संगीत में केवल लय की विशेषता होती है। अधिकतर कुछ विशेष स्वरों या धुन पर सारा गीत गाया अथवा बजाया जाता है। पर ताल वाद्य जैसे ढोलक, तबला आदि के द्वारा लय के कारण आनन्द की प्राप्ति होती है। ग्रामीण गीत, ढोलक के गीत आदि इसी संगीत के अन्तरगत आते हैं।

(२) दूसरे प्रकार का संगीत वह है जिसमें लय व स्वर दोनों का बराबर महत्व है। इन गीतों में एक निश्चित लय के साथ स्वरों का महत्व भी होता है। इस संगीत के अन्तरगत फिल्मी संगीत, भजन, पद आदि आते हैं।

(३) तीसरे प्रकार का संगीत वह है जिसमें लय का स्थान स्वर से कम है। इस संगीत में लय का आनन्द कम आता है तथा स्वरों का अधिक। शास्त्रीय संगीत के बड़े ख्याल, ध्रुपद, धमार आदि इसी के अन्तरगत आ सकते हैं। इस संगीत के लिये श्रोताओं को संगीत के कुछ ज्ञान की आवश्यकता पड़ती है।

इस विभाजन से सगीत में ताल अथवा लय का महत्व समझ में आता है। जिस संगीत में स्वर की अपेक्षा लय का महत्व अधिक है उससे प्रत्येक मनुष्य आनन्द को प्राप्ति करता है। प्रत्येक मनुष्य उसी लय में झूम उठता है। परन्तु ताल या लय के महत्व के साथ ही संगीत का आनन्द भी कम होता जाता है।

Downloaded from www.dunlinedyo

अष्टम अध्याय

भारतीय संगीत का संक्षिप्त इतिहास

यह बतलाना कि भारतीय संगीत की उत्पत्ति किस समय तथा किसके द्वारा हुयी, बड़ा कठिन है। संगीत की उत्पत्ति के लिये बहुत सी किंवदंतियाँ सुनने में आती हैं। यह किंवदंतियाँ भारतीय संगीत का सम्बन्ध देवी, देवताओं से जोड़ती हैं। कुछ लोगों का विचार है कि इस कला की उत्पत्ति ब्रह्मा जी ने स्वयं की तथा प्रचार सरस्वती जी द्वारा हुआ। सरस्वती जी के पुत्र नारद ने वीणा का अविष्कार किया। कुछ लोगों का विचार है कि ब्रह्मा ने इस विद्या को शंकर भगवान को सिखलाया और फिर शंकर ने इसे सरस्वती को दिया। परन्तु कुछ लोगों का कहना है कि संगीत का अविष्कार शंकर भगवान ने स्वयं किया जिसमें उन्होंने गायन, वादन तथा नृत्य का समावेश किया। ६ रागों की उत्पत्ति भी शंकर जी द्वारा मानते हैं। पाँच रागों को तो शंकर ने अपने पाँच मुखों से उत्पन्न किया तथा एक राग पार्वती जी ने उत्पन्न किया।

इस प्रकार के और भी विचार सुनने को मिलते हैं जिनको देखकर यह निश्चित करना बड़ा कठिन है कि संगीत की वास्तविक उत्पत्ति किसके द्वारा हुयी। मोटे तौर पर संगीत के सम्पूर्ण इतिहास का अध्ययन करने के लिये हम उसे तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं:—

(१) प्राचीन काल (हिन्दुओं का समय)—आदि काल से – १० वीं शताब्दि तक।

(२) मध्यकाल (मुसलमानों का समय)—११ वीं शताब्दि से १८ वीं शताब्दि तक।

(३) आधुनिक काल (अंग्रेजों का समय तथा अंग्रेजों के बाद का समय)—१९ वीं शताब्दि से आज तक।

[१] प्राचीन काल [हिन्दुओं का समय]

वेदों का अध्ययन करने पर मालूम होता है कि संगीत कला उसी समय से प्रचलित है। सामवेद में संगीत का बड़ा महत्व देखने में आता है उसका पाठ भी संगीतमय है। वेदों का काल लगभग ईसा के २००० वर्ष पूर्व का मानना चाहिये। इस समय से ईसा के १००० वर्ष पूर्व तक संगीत का यही रूप मिलता है। इस समय संगीत में केवल ३ स्वरों का प्रचार था। नारद तथा पाणिनि के ग्रन्थों से इस बात को पुष्टि मिल जाती है। इन तीन स्वरों के नाम उदात्त, अनुदात्त और स्वरित थे। बाद में चलकर इन तीन स्वरों में और स्वरों का समावेश हो गया। पाणिनि के समय तक हमें ७ स्वरों का स्वरूप मिलता है। हमारे देश के यही सातों स्वरों की स्वरलिपि अरब देश में पहुँची और अरब से ग्यारहवीं शताब्दि तक यूरोप के देशों में पहुँच गई।

महाभारत काल जो ईसा के ५०० वर्ष पूर्व से २०० वर्ष ईसा के बाद तथा रामायण काल जो ईसा के ४०० वर्ष पूर्व से २०० वर्ष ईसा के बाद तक का माना जाता है संगीत का प्रचारिक युग था। महाभारत काल में सात स्वरों का विकास हुआ तथा गायन, वादन तथा गांधार ग्राम आदि का उल्लेख भी मिलता है। रामायण काल में संगीत का अच्छा प्रचार था। रामायण की चौपाइयों से इस बात की पुष्टि होती है। रावण स्वयं एक संगीतज्ञ

था। इस समय जिन वाद्यों का उल्लेख मिलता है उनमें दुंदभी, मृदंग, डिमडिम, वीणा आदि प्रमुख हैं।

तामिल भाषा की 'पारीपाडल' नामक पुस्तक तथा व्याकरणाचार्य पाणिनि के ग्रन्थों से संगीत की २२ श्रुतियों, सात स्वरों तथा जातियों का वर्णन मिलता है। इन सब बातों से यह कहा जा सकता है कि इस समय संगीत का अच्छा प्रचार था। महाकवि कालीदास (४०० ई) तथा उनके समकालीन अन्य कवियों की रचनाओं से उनके समय के संगीत का पता लगता है। उस समय हिन्दू राजाओं को इस कला से प्रेम था तथा अपने दरबार में संगीतज्ञों को स्थान देते थे।

भरत का 'नाट्य शास्त्र'—पाँचवी शताब्दि में श्री भरत ने "नाट्य शास्त्र" नामक ग्रन्थ लिखा। इस ग्रन्थ में भरत ने श्रुति, स्वर, ग्राम, मूछना, जातियों आदि का वर्णन किया है। भरत ने षडज ग्राम तथा मध्यम ग्राम की कुल मिलाकर १८ जातियों का वर्णन किया है। भरत के पुत्र दत्तिला द्वारा 'दत्तिलम' नामक पुस्तक लिखी गई। इस पुस्तक का समय भी पाँचवीं शताब्दि का है। इसी समय के लगभग मतंग मुनी ने 'बृहद देशी' नामक पुस्तक लिखी। मतंग ने अपनी पुस्तक में सबसे पहिले 'राग' शब्द का प्रयोग किया।

इन सामग्रियों से यह पता चलता है कि पाँचवीं से छटी शताब्दि तक संगीत का काफी प्राचार था। भरत का 'नाट्य शास्त्र' प्राचीन संगीत का आधारिक ग्रन्थ माना जाता है।

सातवीं शताब्दि में भक्ति अन्दोलन आरम्भ हुआ। भक्तों ने अपनी भक्ति के साथ साथ संगीत का बड़ा प्रचार किया। क्योंकि भक्त लोग जनता में संगीत के द्वारा ही प्रचार किया करते थे। आठवीं शताब्दि में संगीत की यही दशा रही। परन्तु नवीं

और दशवीं शताब्दि में संगीत अपने उच्च शिखर पर पहुँच गया। नारद ने "नारदीय शिक्षा" नामक पुस्तक इसी समय लिखी। कुछ लोगों का विचार है कि 'नारदीय शिक्षा' इस समय नहीं लिखी गयी परन्तु जहाँ तक पता लगता है यह पुस्तक नवीं शताब्दि में ही लिखी गई। संगीत 'मकरंद' भी इसी समय लिखी गई। इस समय देशी रियासतों में भी संगीत की बड़ी उन्नति हुई। मुसलमानों के आगमन के पहिले संगीत कला अपने उच्च शिखर पर थी। केपटिन डे के कथन के अनुसार यह समय भारतीय संगीत का स्वर्ण युग था। मुसलमानों के आगमन के साथ ही संगीत की अवनति शुरू हो गई।

[२] मध्यकाल [मुसलमानों का समय] ११वीं से १८वीं शताब्दि तक

मुसलमानों का आगमन भारतवर्ष में ग्यारहवीं शताब्दि से आरम्भ हुआ। इनके आने के साथ ही भारतीय संगीय में परिवतन होने लगे। आरम्भ में तो मुसलमानों ने इस कला को अपनाया और उसमें फारसी संगीत का मिश्रण करके नये अविष्कार किये। चौदहवीं शताब्दि तक मुसलमानों ने इस कला में काफी उन्नति कर ली और नये-नये वाद्यों जैसे सितार तबला आदि तथा नये नये रागों का आविष्कार किया। मुसलमान बादशाहों ने भी इस कला के प्रति बड़ा प्रेम दिखलाया। इसी कारण उनके दरबार में भी इस विद्या को खूब प्रोत्साहन मिला। मुसलमान विद्वानों ने संगीत के शास्त्र (Theory) को उपेक्षा कर के उसका कियात्यक रूप ही विकसित किया। इसी समय से 'प्रबन्धों' का प्रचार समाप्त हुआ और उनकी जगह ध्रुपद, धमार, ख्याल, ठुमरी तराने, टप्पे आदि गाये जाने लगे। कुछ लोगों का विचार है कि मुसलमानों के आगमन से ही उत्तरी तथा दक्षिणी संगीत पद्धतियाँ अलग-अलग विकसित होने लगीं।

११ वीं शताब्दि में देश में मुसलमानों के आगमन के कारण गड़बड़ी रही। इस कारण संगीत कला की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया जा सका। १२ वीं शताब्दि में जयदेव नामक एक प्रसिद्ध कवि तथा संगीतज्ञ हुआ, जिसने "गीत-गोविन्द" पुस्तक लिखी। भारतवर्ष का सबसे पहला गायक जयदेव ही माना जाता है। 'गीत-गोविन्द' में बहुत से राधा-कृष्ण के प्रेम गीत हैं। परन्तु स्वरलिपि न होने के कारण उनका उचित मूल्यांकन नहीं किया जा सकता। फिर भी राग के नाम तथा ताल के नाम इस पुस्तक में दिये गये हैं।

"संगीत रत्नाकर" :—१३ वीं शताब्दि में संगीत के विद्वान पं० शारंगदेव ने "संगीत रत्नाकर नामक एक संगीत ग्रन्थ लिखा। पं० शारंगदेव देवगिरि के यादव वंश के राजा के दरबार में थे। इस ग्रन्थ में उन्होंने नाद, श्रुति, स्वर, ग्राम, मूर्छना जातियाँ आदि का विस्तार पूर्वक वर्णन किया है। शारंगदेव ने अपने समय से पहले के सब संगीत ग्रन्थों को मान्यता दी है। इन्होंने सम्वादी स्वरों का अन्तर जो ९ और १३ श्रुतियों का माना जाता था, ८ और १२ श्रुतियों का माना। इनके समय में प्रबन्धों के गाने का प्रचार था। इस ग्रन्थ को उत्तरी तथा दक्षिणी दोनों संगीत पद्धतियाँ अपना आधारिक ग्रन्थ मानती हैं।

अलाउद्दीन खिलजी—(१४ वीं शताब्दी)—१४ वीं शताब्दी में संगीत की बहुत उन्नति हुयी। इस समय दिल्ली का बादशाह अलाउद्दीन खिलजी (१२९६-१३१०) था। वह स्वयं संगीत का प्रेमी था। उसके दरबार में अमीर खुसरो नाम का सुप्रसिद्ध कवि, संगीतज्ञ तथा राज मन्त्री था। अमीर खुसरो संगीत के क्षेत्र में बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। उन्होंने कई नये राग, कई ताल, कई वाद्य तथा कई नयी गायन शैलियों

का अविष्कार किया। आपने फारसी संगीत का भारतीय सं
में मिश्रण करके, रागों में : पूर्वी' यमन, रात की पुरि
सरपर्दा आदि तालों में :—सवारी, पश्तो, झूमरा, अ
चौताल, जल्द त्रिताल, सूलफाक आदि वाद्यों में—सित
तबला, ढोल आदि तथा गायन शैलियों में :—कव्वाली ख
(छोटा ख्याल), तराना, गजल, सोहला आदि नये अविष्
किये।

१४ वीं शताब्दि में दक्षिण के विजय नगर राज्य में गोप
नायक एक प्रसिद्ध गायक था। उसने भी कुछ अविष्कार कि
थे जैसे राग बड़हंस, तोड़ी, सारंग, पीलू आदि। अलाउद्दीन
दक्षिण पर विजय की और इस कारण गोपाल नायक को दि
आना पड़ा। दिल्ली आने पर अमीर खुसरो तथा गोपाल ना
में मुठभेड़ हुयी जिसमें अमीर खुसरो की जीत हुयी।

राग तरंगिणी :—१५ वीं शताब्दि के आरम्भ में ल
लोचन ने राग 'तरंगणी" नामक पुस्तक लिखी। इन्होंने रा
रागिनी तथा राग-वर्गीकरण के स्थान पर मेल-राग या थाट-रा
पद्धति को स्थान दिया तथा कुल १२ थाट माने। १२ थाटों से
अपने समय के सब रागों की उत्पत्ति की। इन्होंने अपना शु
थाट आजकल के काफी थाट के समान माना।

सुलतान हुसैन शर्की:— (१४५८-१४८० ई०) १५ वीं शताब्दि
में जौनपुर के बादशाह संगीत के विद्वान तथा प्रेमी थे। आप
संगीत के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किया। कलावती ख्या
(बड़े ख्याल) का अविष्कार आपने ही किया। इसके अलावा आ
कई नये रागों का अविष्कार किया जैसे—जौनपुरी, जौनपुर
तोड़ी, सिन्धु भैरवी, सिन्दूरा इत्यादि आपके समय में ध्रुप
गायन का प्रचार था। उसी के आधार पर आपने प्र

शुद्ध गीत की रचना को अर्थात् बड़े ख्याल की रचना को जिसने आज ध्रुपद का स्थान प्राप्त कर लिया है।

इसी समय उत्तरी भारत और बंगाल में भक्ति आन्दोलन आरम्भ हो गया। जिसमें कीर्तन आदि से संगीत का खूब प्रचार हुआ। दक्षिणी संगीत का एक विस्तृत ग्रन्थ "स्वर मेल कलानिधि" इसी समय श्री रामामात्य द्वारा लिखा गया।

अकबर का समय—(१६ वीं शताब्दि)—अकबर का समय (१५५६-१६०५) भारतीय संगीत के इतिहास में स्वर्णयुग कहा जाता है। इस समय संगीत की इतनी उन्नति हुयी कि यह कला अपने उच्च शिखर पर पहुंच गई। बादशाह स्वयं संगीत का अत्यधिक प्रेमी तथा जानकार था। अपने दरबार में उसने भिन्न भिन्न जाति व देशों के कुल ३६ गायक रक्खे थे जिनमें तानसेन, नायक बैजू, नौबत खाँ, मसीत खाँ, तानतरंग खाँ, बाजबहादुर आदि उल्लेखनीय हैं। तानसेन इन सब में श्रेष्ठ थे। उनका नाम अकबर के दरबार के नव रत्नों में से था। तानसेन वृन्दावन के स्वामी हरिदास के शिष्य थे। ध्रुपद गायन में आप अपना जोड़ नहीं रखते थे। आपने अपने गायन में चमत्कार प्राप्त किये थे। तानसेन ने अनेक नये रागों का अविष्कार किया। उन्होंने अपने रागों में अधिकतर "मियाँ" शब्द लगाया जैसे—"मियाँ की मल्हार", "मियाँ की सारंग", "मियाँ की तोड़ी तथा दरबारी कानड़ा, रामदासी-मल्हार इत्यादि। तानसेन के वंशजी "सैनी" कहलाते हैं तथा इनका घराना "हुसैनी" घराने के नाम से प्रसिद्ध है।

इसी समय ग्वालियर के राजा मानतोमर संगीत के अच्छे विद्वान थे। लोगों का विचार है कि ध्रुपद गायन का अविष्कार आपने ही किया। परन्तु इस विषय में मतभेद है। कुछ लोगों का कहना है कि स्वामी हरिदास जो तानसेन के गुरु थे ध्रुपद ही

दमखी ने एक सप्तक में शुद्ध तथा विकृत १२ स्वरों को मान्यता दी है।

मोहम्मदशाम 'रंगीले' (१७१६ ई०) मुगल वंश के अंतिम बादशाह मुहम्मदशाह रंगीले, संगीत के बड़े प्रेमी थे। वे स्वयं गीतों की रचना करते थे। उनकी रचनायें आज भी सुनने में आती हैं। आपके दरबार में अदारंग तथा सदारंग दो भाई बहुत उच्च संगीतज्ञ थे उन्होने हजारों ख्याल बनाये और अपने शिष्यों को सिखलाये। आज भी सदारंग और 'अदारंग' के ख्याल खूब गाये जाते हैं।

इसी समय लखनऊ के गुलाम रसूल शौरी ने टप्पा गीत का आविष्कार किया।

इसी समय पं० श्री निवास ने "राग तत्त्वविबोध" नामक पुस्तक लिखी। इस पुस्तक में आपने पं० अहोबल की भांति वीणा के तार की लम्बाई पर भिन्न भिन्न नापों से १२ स्वरों की स्थापना की। आपने भी अपना शुद्ध थाट आजकल के काफी थाट के के समान माना। दक्षिण में मराठा राजा तुलाजी राव भोंसले ने (१७६३-१७८७ ई०) कर्नाटकी संगीत पद्धति पर दो पुस्तक "संगीत सारामृतम" तथा "राग लक्ष्णम" लिखीं।

[३] आधुनिक-काल—(अंग्रेजों तथा अंग्रेजों के बाद का समय) १९ वीं शताब्दि से आज तक—

अंग्रेजों के आगमन से भारतीय संगीत को बड़ी हानि हुई। अंग्रेज लोग भारतीय संगीत को पसन्द नही करते थे। केवल कुछ देशी रियासतों में संगीत कला को आश्रय मिला था तथा वहीं पर संगीत का प्रचार था। पाश्चात्य सभ्यता के फैलने से संगीत की अच्छे घरों में उपेक्षा होने लगी थी। परन्तु कुछ अंगरेजों ने जैसे—कैप्टिन डे, सर डब्लू आडसले, कैप्टिन

विलर्ड आदि ने इस कला का अध्ययन किया और इस ओर ध्यान भी दिया। सन १८१३ ई० में पटना के मुहम्मदरजा साहब ने "नग़मातेआसफी" नामक संगीत की एक पुस्तक लिखी। इस पुस्तक में आपने सबसे प्रथम बिलावल थाट को शुद्ध थाट माना तथा पुरानी राग-रागनी, पुत्र-राग व पुत्रबधु आदि पद्धति के स्थान पर थाट-राग पद्धति को स्वीकार किया। यह पुस्तक आधुनिक संगीत के क्षेत्र में बड़े महत्व की है।

जयपुर के महराजा श्री प्रताप सिंह (१८७-९१८०४) ने इसी समय "संगीत-सार" नामक पुस्तक हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति पर लिखी। आप संगीत के अच्छे विद्वान थे। अपनी पुस्तक में आपने रजा साहब की तरह बिलावल को शुद्ध थाट माना। इसी समय सन् १८४२ ई० के लगभग श्री कृष्णानन्द व्यास ने "संगीत कल्पद्रुम" पुस्तक लिखी इस पुस्तक में बहुत सारे गीतों का संग्रह है परन्तु इन गीतों की स्वरलिपि न होने के कारण आज उसका मूल्यांकन नहीं किया जा सकता।

जिस समय उत्तर भारत में रागों की उत्पत्ति के नये विचार फैल रहे थे, तंजौर दक्षिणी संगीत का मुख्य केन्द्र था। इस समय दक्षिणी संगीत के प्रसिद्ध विद्वान त्यागराज, श्याम शास्त्री सुब्बराज दीक्षित आदि हुये। बंगाल के सर सुरेन्द्रमोहन टैगौर ने उत्तर की थाट राग पद्धति को गलत माना और उसके स्थान में अपनी पुस्तक 'यूनीवर्सल हिस्ट्री आफ म्यूजिक' में प्राचीन राग-रागनी पद्धति को फिर से अपनाया।

यह समय संगीत का प्रचार काल था। सरकार से प्रोत्साहन न मिलने के कारण इस कला की अवनति हो रही थी। परन्तु कठिन समय के उपरान्त भी कुछ देशी रियासतों जैसे—ग्वालियर, जयपुर, बड़ौदा, रामपुर आदि में संगीत को आश्रय मिला था। कुछ बड़े बड़े नगरों में भी संगीत की साधना कुछ खानदानी

संगीतज्ञ कर रहे थे। इन नगरों में दिल्ली, बनारस, लखनऊ बम्बई आदि प्रमुख थे। ऐसे समय में संगीत के दो महापुरुष जिन्होंने संगीत का उद्धार किया इस क्षेत्र में आये। ये दो महारथी स्व: पं० विष्णु दिगम्बर पालुष्कर तथा स्व: पं० विष्णु नरायण भातखंडे थे। आज के संगीत का सारा श्रेय इन्ही दोनों को प्राप्त है। अपने अकथ परिश्रम से दोनों ने गायन तथा संगीत-शास्त्र को नव-जीवन-रस प्रदान किया। नीचे दोनों महापुरुषों का सूक्ष्म परिचय दिया जाता है:—

(१) पं० विष्णु दिगंबर पालुष्कर का जन्म बेलगांव रियासत में हुआ था। आपने संगीत की साधना करके सारे देश में भ्रमण किया और जनता का मन संगीत की ओर आकर्षित किया। आपने गन्धव महा विद्यालय मंडल की स्थापना की। आपने लगभग १०० शिष्यों को संगीत कला में निपुण करके संगीत के प्रचारार्थ सारे देश के कोने कोने में फैला दिया। पं० जी ने एक स्वर लेखन पद्धति निकाली तथा कई छोटी बड़ी पुस्तकें भी संगीत सम्बन्धी लिखी। पं० जी का देहान्त १९३१ में हुआ।

(२) पं० विष्णु नरायण मातखन्डे जी का जन्म बम्बई प्रान्त में हुआ आपने बी० ए० एल० एल० बी० तक उच्च शिक्षा प्राप्त की। आपने भारत के बड़े बड़े नगरों व रियासतों में भ्रमण किया तथा अनेक विद्वानों से संगीत की अनेक चीजें प्राप्त कीं। आपने सरल तथा वैज्ञानिक स्वर लेखक पद्धति बनाई और अपने संग्रह को 'क्रमिक पुस्तक मालिका' के ६ भागों में प्रकाशित किया। आपने संगीत के शास्त्र पर बहुत सी पुस्तकें लिखीं। पं० जी ने ग्वालियर, बड़ौदा, लखनऊ आदि नगरों में संगीत के विद्यालय (Music College) खोले जो आज तक संगीत का प्रचार कर रहे हैं।

पं० विष्णु दिगम्बर जी द्वारा प्राप्त पुस्तकों में प्रमुख इस प्रकार हैं:—संगीत बालबोध ५ भाग, संगीत-तत्व दर्शक, बालोदय संगीत, राग प्रवेश १६ भाग, टप्पा गायन, भारतीय संगीत लेखन पद्धति इत्यादि। पं० विष्णुनरायण जी भातखन्डे द्वारा प्राप्त पुस्तकें इस प्रकार हैं :—स्वरमालिका (गुजराती), हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति क्रमिक पुस्तक मालिक ६ भागों में, हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति, अभिनय राग मंजरी (संस्कृत), लक्ष्यसंगीत (संस्कृत) आदि।

दोनों महापुरुषों ने देश के बड़े बड़े नगरों में संगीत के जलसे तथा संगीत सम्मेलन किये। पं० भातखन्डे ने सबसे पहला संगीत सम्मेलन (Conerence) बड़ोदा में किया, जिसका उद्घाटन बड़ौदा नरेश ने स्वयं किया। इन्हीं महापुरुषों के परिश्रम स्वरूप आज देश में अनेक संगीत विद्यालय चल रहे हैं जिनमें से प्रमुख यह हैं :— (१) म्यूजिक कालेज कलकत्ता, (२) गंधर्व महाविद्यालय बम्बई (३) स्कूल आफ इन्डियन म्यूजिक बम्बई (४) गंधर्व महाविद्यालय पूना (५) माधव संगीत विद्यालय ग्वालियर (६) भातखन्डे संगीत विद्यापीठ (मैरिस कालेज) लखनऊ (७) स्कूल आफ इन्डियन म्यूजिक बड़ौदा (८) प्रयाग संगीत समिति इलाहाबाद (९) गंधर्व महाविद्यालय दिल्ली (१०) संगीत समाज कानपुर इत्यादि। इन विद्यालयों में से कुछ विद्यालय संगीत की उपाधियाँ (Degree) भी देते हैं जैसे:— लखनऊ की "संगीत विशारद" प्रयाग की "संगीत प्रभाकर" ग्वालियर की "संगीत रत्न" बम्बई तथा पूना की "संगीत विशारद" तथा "संगीत प्रवीण" इत्यादि।

आधुनिक संगीत पर बहुत कुछ प्रभाव रवीन्द्र-संगीत (भाव संगीत) का भी पड़ा है। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने अनेक सुन्दर गीतों को भिन्न भिन्न रागनियों में बांधा। पाश्चात्य संगीत का प्रभाव

भी अपने संगीत पर पड़ा। परन्तु अपना शास्त्रीय संगीत इस प्रभाव से अछूता ही रहा। पाश्चात्य संगीत का स्पष्ट प्रभाव फिल्मी संगीत पर पड़ा। आजकल संगीत के प्रचार में फिल्मी संगीत ने बहुत हाथ बटाया। फिल्मों द्वारा ही संगीत का प्रचार देश के घर घर में हो सका। दूसरी सहायता रेडियो ने की। रेडियो द्वारा भी शास्त्रीय तथा हल्के संगीत का खूब प्रचार हुआ।

देश स्वतन्त्र होने से सरकार का ध्यान अपनी प्राचीन संगीत-कला की ओर केन्द्रित हुआ। भारतीय सरकार ने इस कला को प्रोत्साहन देने के लिये हर वर्ष देश के चुने हुये संगीतज्ञों को पुरस्कार देना निश्चित किया है। आज देश के अनेक छोटे बड़े नगरों में संगीत के केन्द्र खुल गये हैं। सबसे महान कार्य जो हुआ है वह यह कि संगीत को अन्य विषयों की तरह एक पाठ्य विषय मान लिया गया है तथा इन्टरमीडियेट तक के अलावा कुछ विश्वविद्यालयों (Universities) ने इसे बी० ऐ० तक एक पाठ्य विषय रक्खा है। इन विश्वविद्यालयों के नाम प्रयाग, बनारस आगरा, पटना, नागपुर, काश्मीर तथा पंजाब हैं। हर वर्ष संगीत सम्मेलन भिन्न भिन्न नगरों में हुआ करते हैं जिनसे जनता की रुचि दिन प्रति दिन शास्त्रीय ढ्गीत पर केन्द्रित हो रही है।

स्वरलिपि के अविष्कार से संगीत को बहुत लाभ हुआ है। इसके द्वारा संगीत की पुरानी से पुरानी चीजें उसी रूप में कई सदियों तक रक्खी जा सकती हैं। कुछ विद्वानों ने संगीत की पुस्तकें लिखी हैं जिनमें से प्रमुख इस प्रकार हैं: 'राग-विज्ञान' ५ भागों में लेखक श्री वि० ना० पटवर्धन पूना, 'व्यासकृति' ४ भागों में लेखक प्रो० शंकर गणेश व्यास, 'हिन्दुस्तानी म्यूजिक' लेखक श्री जी० एच० रानाडे, 'दि ओरीजिन आफ राग' लेखक

श्रीपद बंधोपाध्याय, 'म्यूजिक आफ इन्डिया' एच० ए० पोपले, इत्यादि।

शास्त्रीय संगीत के उत्थान के लिये भारत सरकार के मन्त्री डा० बी० वी० केसकर जी ने बहुत महत्वपूर्ण कार्य किया है। आपने रेडियो पर फिल्मी संगीत के स्थान पर शास्त्रीय संगीत को उचित स्थान दिया है। रेडियो के साथ ही आजकल फिल्मी संगीत का झुकाव भी शास्त्रीय संगीत की ओर हो रहा है।

जावनियाँ

शारङ्गदेव—१३वीं शताब्दि में देवगिरी के राजा यादव-वंश के दरबार में पं० शारङ्गदेव थे। आप काशमीरी ब्राह्मण थे। आपके पितामह पहिले काशमीर के पंडित थे जो बाद में दक्षिण भारत में आकर बस गये थे। शारङ्गदेव संगीत विद्या में निपुण थे। आपने प्रसिद्ध ग्रन्थ "संगीत रत्नाकर" लिखा। इस ग्रन्थ के पहिले भी बहुत से ग्रन्थ लिखे गये थे। उन सब की सामग्री को इकट्ठा करके शारङ्गदेव ने "संगीत रत्नाकर" ग्रन्थ रचा। इस ग्रन्थ में आपने गायन, वादन तथा नृतन का पूर्ण वर्णन किया है। श्री भरत ने ५ वीं शताब्दि में तथा श्री मतंग ने भी इन तीनों कलाओं का वर्णन अपने ग्रन्थों में किया है पर इन सब का वर्णन पं० शारङ्गदेव के वर्णन के समान नहीं है हालाँ कि इन सब के सिद्धान्त लगभग एक ही हैं।

श्री शारङ्गदेव ने उत्तरी तथा दक्षिणी भारत के संगीत का मेल करना चाहा और उसके लिये प्रयत्नशील हुये। इसी कारण आपके ग्रन्थ "संगीत रत्नाकर" को उत्तरी तथा दक्षिणी संगीत की दोनों ही पद्धतियाँ अपना आधारिक ग्रन्थ मानती हैं। शारङ्गदेव

ने नारद के सिद्धान्तों को स्वीकार किया है। आपने ग्रामों में गन्धार ग्राम का वर्णन किया है साथ में वादी व सम्वादी स्वरों की श्रुतियों का अन्तर १३ या ९ न मान कर आठ माना है। इनके बाद के विद्वान ८ श्रुतियों का अन्तर ही मानने लगे। आपने अपने ग्रन्थ में १२ स्वरों तथा १८ जातियों का वर्णन किया है। जातियों के लक्षण इस प्रकार माने - ग्रह, अन्श, न्यास, बहुत्व, षाडत्व, औडत्व, सन्यास, विन्यास, मन्द्र तार इत्यादि। शारङ्ग-देव ने अपने परिश्रम से दक्षिणी व उत्तरी संगीत के मेल के साथ अपने तथा प्राचीन काल के संगीत में मेल करने का भी प्रयत्न किया।

प० शारङ्गदेव ने ३० ग्राम राग आदि मिलाकर कुल २६४ राग अपने ग्रन्थ में लिखे। इनके स्वर आधुनिक स्वरों की तरह नहीं थे क्योंकि स्वरांतर ये श्रुति के अन्तर गत रखते थे। इनके अनुसार प्रत्येक इंच पर एक श्रुति पड़ती थी। इनकी वीणा के तार की लम्बाई ४४ इंच थी और मध्य षड्ज २२ इंच पर मानते थे। शारङ्गदेव ने कहीं भी वीणा मिलाने की पद्धति का वर्णन नहीं किया। इनके स्वर आधुनिक संगीत में प्रयोग करने से सब बेसुरे रहते हैं।

इनके समय में भरत की जातियाँ नष्ट हो गयी थीं और उन जातियों का स्थान मतंग के रागों ने ले लिया था। परन्तु शारङ्गदेव ने अपने राग जिन्हें "आधुना प्रसिद्ध" कहते थे, प्रचार में लाये इस कारण मतंग के राग भी लुप्त हो गये।

शारङ्गदेव के प्रसिद्ध होने का कारण केवल उनकी अमर कृति "संगीत रत्नाकर" ही है। आधुनिक समय में भी इस ग्रन्थ का बहुत महत्व है।

(२) अमीर खुसरो

खुसरो का जन्म एटा जिले में परियाली नामक स्थान पर हुआ था। आपने गयासुद्दीन बलबन के दरबार में नौकरी कर ली। बलबन के बाद जलालुद्दीन खिलजी गद्दी पर बैठा। खुसरो की योग्यता देखकर जलालुद्दीन खिलजी ने इन्हें "अमीर" की पदवी दी और तभी खुसरो की जगह अमीर खुसरो नाम से ये पुकारे जाने लगे। जलालुद्दीन खिलजी के बाद दिल्ली की गद्दी पर अलाउद्दीन खिलजी बैठा। अलाउद्दीन इनकी योग्यता देख कर अत्यन्त प्रसन्न हुआ और इनका सम्मान भी किया गया। अलाउद्दीन ने इन्हें अपना राजमन्त्री बनाया। इसके साथ ही साथ आप बहुत बड़े गायक, वादक और कवि थे। इसी समय आपने संगीत के क्षेत्र में अपना नाम अमर किया। अलाउद्दीन खिलजी के बाद गयासुद्दीन तुगलक गद्दी पर बैठा। तुगलक ने अमीर खुसरो का अच्छा सम्मान किया। अन्त में आप को संसार से विरक्ति हो गई और सन् ७२५ हिजरी में आपका स्वर्गवास हुआ।

अमीर खुसरो संगीत संसार में बहुत प्रतिभाशाली स्थान रखते हैं। आधुनिक संगीत इनका सदैव आभारी रहेगा। आपने केवल गायन तथा वादन में निपुणता ही प्राप्त नहीं की बल्कि संगीत के क्षेत्र में कई नये आविष्कार किये। दक्षिण के सर्वोच्च संगीतज्ञ गोपाल नायक को आपने संगीत कला में परास्त किया था इससे आपकी योग्यता का पता चलता है।

अमीर खुसरो ने फारसी और भारतीय संगीत का मिश्रण करके जो आविष्कार किये वे इस प्रकार हैं :—

(१) **गायन :**—अमीर खुसरो ने एक नयी गायकी निकाली जिसे "कव्वाली" कह कर पुकारा जाता था जो आगे चल कर "छोटा ख्याल" कहलाने लगा। इन्होंने ही "तराना" नामक एक

नये प्रकार का गायन निकाला। "तराने" के बोल इन्होंने वीणा से लिये आज इनके आविष्कारों का खूब प्रचार है।

वाद्य :—अमीर खुसरो ने कई नये वाद्यों का अविष्कार किया। आपने पखावज को दो भागों में विभाजित कर दिया और तबले का अविष्कार किया। बहुत से विद्वान इसको अविष्कार न मान कर केवल रूप परिवर्तन ही मानते हैं। परन्तु कुछ भी हो अमीर खुसरो ने तबले को प्रचार में लाया।

खुसरो ने दूसरा अविष्कार 'सितार' का किया। वीणा तथा तानपूरे के मिश्रण से इन्होंने इस वाद्य को बनाया। पहिले इसका नाम 'सहतार' रक्खा गया। 'सह' के अर्थ हैं तीन और क्योंकि इस वाद्य में तीन तार होते थे इसलिये इसका नाम 'सहतार' रक्खा। बाद में 'सहतार' का नाम बिगड़ कर सितार हो गया।

राग :—अमीर खुसरो ने अनेक नये रागों का अविष्कार किया जैसे: सरपरदा, साजगिरी, यमन, रात की पुरिया, पूर्वी, बरारी तोड़ी इत्यादि।

ताल :—आपने कई नये तालों को भी निकाला जैसे आड़ा-चौताल, सवारी, झूमरा, जल्द त्रिताल, परतो, सूलफाक आदि।

इस तरह हम अमीर खुसरो की योग्यता का भास कर सकते हैं। संगीत के साथ ही आप फारसी के प्रसिद्ध कवि थे। इनके इन्हीं गुणों को देखकर राजमन्त्री बनाया गया। भारतीय संगीत आज भी अमीर खुसरो का उपकार मानता है।

(२) तानसेन

तानसेन का जन्म सन् १५४४ ई० में हुआ था। इनके जन्म स्थान के विषय पर विद्वानों में मतभेद है। कुछ लोग लाहौर इनका

जन्म स्थान मानते हैं तथा कुछ लोग ग्वालियर के बेहट गांव को। ग्वालियर राज्य में इनका जन्म अधिक उचित है। आपके पिता का नाम प० मकरन्द भट्ट था। कुछ लोगों का कहना है कि मकरन्द भट्ट तथा महात्मा सूरदास के पिता पं० रामदास भाई-भाई थे। श्री मकरन्द के कोई सन्तान न होती थी इस पर शंकर भगवान की आराधना करने पर इन्हें पुत्र मिला। तानसेन ५ वर्ष तक मूक ही रहे इसलिये शंकर की फिर आचना की गई और तानसेन को मधुर कण्ठ प्राप्त हुआ।

एक बार तानसेन वृन्दावन गये। वृन्दावन के किसी बाग में बैठ कर वे शेर की बोली बोल रहे थे जिसे स्वामी हरिदास (जो वहाँ पास ही से जा रहे थे) ने सुन लिया। बालक की मधुर वाणी को सुन कर स्वामी जी प्रसन्न हुये और उसे संगीत सिखलाने के लिये अपने साथ ले गये। उस समय स्वामी हरिदास के और भी शिष्य थे जिनमें नायक बैजू, पं० दिवाकर, सोमनाथ तथा गोपाल जी आदि प्रमुख थे। तानसेन स्वामी जी से संगीत की उच्च शिक्षा प्राप्त करके रीवाँ नरेश श्री रामचन्द्र जी के यहाँ रहने लगे। राजा रामचन्द्र संगीत के बड़े पारखी थे। परन्तु अकबर ने जब तानसेन का नाम सुना तो वह निश्चय कर लिया कि ऐसा संगीतज्ञ उसके दरबार की शोभा के लिये अवश्य होना चाहिये। इससे सम्राट ने जलालुद्दीन कुर्ची नामक दरबारी को भेजकर तानसेन को अपने पास बुलवा लिया।

तानसेन के बचपन का नाम तन्ना मिश्रा था। आपके पिता ग्वालियर नरेश के यहाँ जाया आया करते थे। ग्वालियर नरेश तन्ना से बहुत प्रसन्न रहते थे और उन्होंने ही तन्ना को तानसेन की उपाधि दी थी। परन्तु कुछ लोगों का कहना है कि तन्ना को तानसेन की उपाधि अकबर बादशाह ने दी थी। अकबर संगीत का बड़ा प्रेमी था। उसने तानसेन का बड़ा सम्मान किया तथा उसे

अपने नव रत्नों में प्रमुख स्थान प्रदान किया। अकबर के दरबार में भिन्न २ प्रकार के कुल ३६ गायक थे जिनमें तानसेन सर्वश्रेष्ठ थे। तानसेन को गाने में सिद्धि प्राप्त थी। उनके दीपक राग गाने पर दीपक जल जाते थे व मेघ राग गाने पर मेघ पानी बरसाने लगते थे।

तानसेन, सूरदास व मीराबाई आदि भक्तों के साथी थे। बाद में चल कर तानसेन भी भक्त हो गये थे। कविता करने का भी आपको अभ्यास था। परन्तु आपकी लिखी कवितायें उपलब्ध नहीं है आपकी लिखी दो-तीन पुस्तकें संगीत के विषय में मिलती हैं।

तानसेन ब्राह्मण थे पर बाद में उन्होंने मुसलमान धर्म अपना लिया था। तानसेन के मुसलमान होने में लोगों के भिन्न भिन्न विचार हैं। कुछ लोगों का कहना है कि तानसेन रीवाँ में ही रहना चाहते थे और अकबर के पास जाना पसन्द नहीं करते थे। परन्तु अकबर के कहने पर रीवाँ नरेश ने उन्हें आगरे भेज दिया था। जब अकबर ने तानसेन को गाने के लिए कहा तो तानसेन ने इनकार कर दिया। इस पर अकबर बादशाह ने तानसेन को प्रसन्न करने के लिए अपनी लड़की की उनसे शादी कर दी। इस प्रकार तानसेन मुसलमान हो गये। कुछ लोगों का विचार है कि तानसेन प्रारम्भ से ही मुसलमानों के साथ रहते थे और यह देख कर उन्हें जाति से निकाल दिया गया था। इसलिये उन्होंने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया। कुछ लोगों का विचार है कि तानसेन शेख मुहम्मद गौस से संगीत सीखना चाहते थे परन्तु गौस साहब मुसलमान को छोड़कर किसी अन्य को शिक्षा नहीं देते थे। इसलिये तानसेन को मुसलमान धर्म स्वीकार करना पड़ा। मुसलमान होने पर गौस साहब ने अपनी जिव्हा तानसेन की जिव्हा से मिला दी जिससे तानसेन का गला मधुर हो गया।

तानसेन ध्रुपद गायन में बेजोड़ थे। कहते हैं कि तानसेन को अपने संगीत पर अभिमान हो गया था जिसके कारण उन्होंने अकबर से कह कर आगरे शहर में गाने की बन्दी करा दी थी। जो कोई भी गाता था उसे तानसेन से मुटभेड़ करनी पड़ती थी और हारने पर जीवन देना पड़ता था। एक बार एक साधू मंडलि जो कीर्तन कर रही थी पकड़ कर दरबार में बुलाई गई। साधुओं को आगरे के नियम के बारे में कुछ पता नहीं था। सब साधुओं को प्राणदण्ड मिला केवल एक बालक छोड़ दिया गया। वही बालक बैजू अपने पिता का बदला लेने को ठान कर संगीत की साधना स्वामी हरिदास द्वारा करने लगा। तपस्या पूर्ण होने पर गुरु ने बैजू से बचन ले लिया कि वह संगीत से किसी का बुरा न करेगा। अकबर के सामने दोनों संगीतज्ञों की स्पर्धा हुयी जिसमें तानसेन को हार माननी पड़ी। परन्तु बैजू बावरे ने तानसेन की मृत्यु को बादशाह से प्रार्थना करके रुकवा दिया साथ में आगरे में गाने की मनाही का नियम समाप्त करा दिया।

संगीत के क्षेत्र में तानसेन ने कई नये अविष्कार किये। जो इस प्रकार हैं।:—

(१) सुरबहार का अविष्कार आपने वीणा के आधार पर किया।

(२) वीणा के ही आधार पर आपने 'रबाब' नामक वाद्य का अविष्कार किया। अभी तक लोग वाद्यों पर ध्रुपद अंग ही बजाते थे परन्तु इस समय से गतों का प्रचार हुआ।

(३) तानसेन ने अनेक नये रागों का अविष्कार किया तथा कई रागों का स्वरूप बदला। अपने रागों में आपने 'मियाँ' शब्द का प्रयोग किया जैसे—मियाँ मल्हार, मियाँ की सारंग, मिया की तोड़ी आदि दरबारी कानड़ा भी आपने ही रचा था।

तानसेन के दो पुत्र तानतरंग खां और बिलास खाँ थे इनके घराने को 'हुसैनी' घराने के नाम से पुकारते हैं तथा तान सेन के वंशज 'सैनी' कहलाते हैं। इनकी शिष्य परम्परा तीन भागों में विभाजित हो गई (१) बीनकार (२) रबाबिया (३) गायक (ध्रुपद)। तानसेन की मृत्यु सन् १५६५ में हुयी।

(४) विष्णु दिगम्बर पालुष्कर

पं० विष्णु दिगम्बर पालुष्कर जी का जन्म कुरुन्दवाड़ रियासत बेलगांव में सन् १८७२ ई० की श्रावण पूर्णिमा के दिन हुआ था। आपके पिता का नाम श्री दिगम्बर गोपाल था और माता का नाम श्रीमती गंगा देवी था। बचपन में पंडित जी की आखों में किसी प्रकार चोट लग जाने से वे कमजोर हो गई और इस प्रकार आपकी पढ़ाई भी समाप्त हो गयी। पढ़ाई समाप्त होने पर आपने मिरज रियासत के राजासाहब के आश्रय में स्व: पं० बालकृष्णा बोवा इचलकरंजी वाले के पास संगीत कला का अभ्यास आरम्भ कर दिया। पन्द्रह वर्ष की आयु में आपका विवाह श्रीमती रामाबाई के साथ हो गया। आपके १२ बच्चे हुए जिनमें केवल एक जीवित हैं जिनका नाम प्रो० दत्तात्रेय विष्णु पलुष्कर है और जो संगीत के क्षेत्र में एक सितारे की तरह चमक रहे हैं।

सन् १८९६ ई० में पंडित जी अपने गुरु जी से बिदाई लेकर भ्रमण के लिये निकल पड़े तथा अपने सुमधुर संगीत से जनता का मन मोह लिया। सबसे प्रथम आपने ५ मई सन् १९०१ ई० में लाहौर में संगीत के प्रचार के लिए गन्धर्व महाविद्यालय की स्थापना की। इसी समय आपके पिता का स्वर्गवास हो गया। पंडित जी ने आर्थिक कमी को पूरा करने के लिये संगीत का एक बहुत

बड़ा जलसा किया और संगीत की एक पत्रिका भी प्रकाशित की। इस प्रकार उनकी आर्थिक दशा कुछ सुधर गई। यह संगीत की पत्रिका १६ वर्ष तक चलती रही जो बाद में बन्द हो गई।

काशमीर के महाराजा ने पंडित जी को निमन्त्रण देकर बुलाया वहाँ से आपको दो हजार रुपये प्राप्त हुये। यह रुपये इस लिए दिये गये कि काशमीर में एक विद्यालय खोला जाय तथा प्रत्येक वर्ष दरबार में पंडित जी का गायन हो।

बम्बई में पंडित जी का बड़ा सम्मान हुआ। अपने गुणों के कारण आप शहर के प्रतिष्ठित नागरिकों के प्रियबन गये। यह देख कर पंडित जी ने बम्बई में विद्यालय खोलने का निश्चय किया। एक भवन का कुछ भाग लेकर गन्धर्व संगीत महा विद्यालय का उद्घाटन समारोह दशहरे के दिन सन् १६०८ में हुआ। धीरे धीरे विद्यार्थियों की बढ़ती हुई संख्या देख कर सारा भवन किराये पर ले लिया गया। रुपये इकट्ठ कर लेने पर पंडित जी ने विद्यालय के लिए सन् १६१५ में भवन की नीव डाली और उसी वर्ष एक विशाल भवन बनकर तैयार हो गया। भवन बनने के कारण कर्ज अधिक हो गया और संगीत का यह भवन कर्जे में ही निकल गया। सन् १६२३ में बम्बई का विद्यालय बन्द हो गया। इसके बन्द होने के पहिले से ही पंडित जी का मन राम भक्ति में लग गया था। उन्हें संसार से विरक्ति होने लगी थी। इसी समय से आप राम नाम के कीर्तन के साथ साथ संगीत का प्रचार करने लगे आपने १६२२ में नासिक में 'रामनाम आधार' आश्रम खोला। पंडितजी भ्रमण करते हुये प्रत्येक शहर में जाकर अपना कार्यक्रम करते थे। जिन २ स्थानों पर पंडित जी ने कार्यक्रम किये उनके कुछ नाम इस प्रकार हैं :—बड़ोदा, सितारा, ग्वालियर, मथुरा, दिल्ली, गिरनार, जालंधर, अमृतसर, लाहौर काशमीर, रावलपिंडी, भरतपुर, जोधपुर, जम्मू, गया, नासिक,

कराँची, हैदराबाद, कलकत्ता, पूना, अयोध्या, झांसी, चित्रकूट, प्रयाग, फैजाबाद, मद्रास, कानपुर, काशी, पटना, नैपाल इत्यादि। आपने रामभक्ति के आधार पर देश भर में पवित्र वातावरण स्थापित कर दिया।

बम्बई के विद्यालय को मुख्य केन्द्र बनाया गया। पंडित जी ने संगीत की पुरानी गायकी का अभ्यास किया था परन्तु वे नये सुधारों के लिये सदैव तत्पर रहते थे। वे अपने शिष्यों से बहस करते थे जिससे उनके शिष्य कोई नई खोज कर सकें। पंडित जी ने लगभग १०० शिष्य निकाले जिसमें से कुछ शिष्य आज संगीत के उच्च कलाकार हैं जैसे श्री ओमकारनाथ, श्री पटवर्धन, नरायणराव व्यास आदि। आपके शिष्य भारत के भिन्न २ शहरों में रह कर बराबर संगीत का प्रचार कर रहे हैं।

सन् १९१६ में बड़ौदा नरेश ने एक अखिल भारतीय संगीत परिषद की योजना की जिसमें पंडित जी से प्रश्न किया गया कि पंडित जी ने अपने विद्यालय में अब तक कितने तानसेन पैदा किये हैं? इस पर पंडित जी ने उत्तर दिया कि "जब तानसेन स्वयं दूसरा तानसेन पैदा नहीं कर सके तो मैं क्या कर सकता हूँ। हाँ मैंने एक कार्य अवश्य किया है जो तानसेन नहीं कर सके। वह यह कि मैंने हजारों कानसेन (गायन समझने वाले) पैदा कर दिये हैं" पंडित जी का कहना था कि गवैया कोई नीच मनुष्य नहीं है उसका स्थान भी एक वकील या अफसर की तरह उच्च है तथा वह और सब से अधिक काम का नागरिक है।

पंडित जी के गीतों में भक्ति रस का प्राबल्य था। आपके अन्दर राष्ट्रीय भावनाओं का ओत प्रोत था। "रघुपति राघव राजाराम" आपका प्रिय कीर्तन था। पंडित जी अपने शिष्यों के साथ राष्ट्रीय सभाओं में राष्ट्रीय गान गाया करते थे। पंडित

जी ने छोटी बड़ी सब मिला कर लगभग ५० पुस्तकें लिखीं। जिनमें कुछ इस प्रकार है:—संगीत बालबोध (५ भागों में) बालोदय संगीत, राग प्रवेश (१६ भागों में), नारदीय शिक्षा, महिला संगीत, टप्पा गायन, भक्तप्रेम लहरी इत्यादि। पंडित जी ने एक स्वतन्त्र स्वर-लेखन पद्धति अथवा स्वरलिपि बनाई जो कि विष्णु दिगंबर पद्धति के नाम से प्रसिद्ध है। यह पद्धति बहुत सूक्ष्म है पर साथ में कुछ कठिन भी है।

पंडित जी का स्वर्गवास मिरज में २१ अगस्त सन् १६३१ को हुआ। आपकी यादगार में गन्धर्व महाविद्यालय मंडल की स्थापना की गई जिसने संगीत का एक पाठ्यक्रम तैयार किया और उत्तीर्ण विद्यार्थियों को उपाधियाँ देन आरम्भ किया आज पंडित जी की यादगार में प्रत्येक वर्ष अनेक नगरों में कार्यक्रम होते हैं।

पं० विष्णु नरायण भातखण्डे

पं० भातखंडे जी का जन्म बम्बई प्रान्त के बालकेश्वर नामक स्थान में १० अगस्त सन् १८६० ई० में कृष्ण जन्माष्ठमी के दिन एक उच्च ब्राह्मण वंश में हुआ था। आपके माता पिता संगीत के बड़े प्रेमी थे। पंडित जी ने सन १८८३ ई० में बी० ए० तथा सन् १८८० ई० में एल० एल० बी० की परीक्षा पास की। उच्च शिक्षा ग्रहण करके आपने लाहौर शहर में वकालत करना शुरू कर दिया। परन्तु बाद में आप बम्बई में आकर वकालत करने लगे। पंडित जी गायन में निपुण थे साथ में आप सितार व बांसुरी भी बहुत अच्छी बजाते थे। आपने संगीत विद्या को कई गुरुओं के द्वारा प्राप्त किया था। आपके मुख्य गुरू मोहम्मद अली खाँ थे जो जयपुर में रहा करते थे। आपके अन्य गुरुओं में ग्वालियर के श्री एकनाथ पंडित व रामपुर के नवाब कलबे

अली खाँ थे। सितार की शिक्षा पंडित जी ने सेठ बल्लभदास से ली थी। सितार सीखने के समय आपके गायन के गुरू श्री बुवा बेलबाधकर थे।

पंडित जी का विचार संगीत सम्बन्धी खोज करना था और इसलिये आप एकाग्रचित्त होकर संगीत की ओर झुक गये। सन् १९०४ ई० में आपने भ्रमण करना शुरू कर दिया। जगह जगह जाकर आपने पुस्तकालयों में संगीत सम्बन्धी पुस्तकों का अध्ययन किया और जगह जगह के संगीत के विद्वानों से वाद-विवाद भी किया। इस प्रकार पंडित जी ने संगीत की बहुत सामग्री एकत्रित कर ली। कुछ स्थान जहाँ जहाँ पंडित जी गये इस प्रकार हैं:—लखनऊ, दिल्ली, बनारस, आगरा, बीकानेर, मथुरा, हैदराबाद, सूरत, जूनागढ़, भावनगर, अहमदाबाद, मद्रास, तंजोर, मैसूर, जगन्नाथ, इलाहाबाद इत्यादि।

सन् १९१६ में पंडित जी ने बड़ौदा में एक बड़ा संगीत सम्मेलन किया। इस सम्मेलन (Conference) का उद्घाटन स्वयं बड़ौदा नरेश ने किया। इस सम्मेलन के प्रणाम स्वरूप आपने सन १९१९ में "आल इन्डिया म्यूजिक ऐकाडमी" खोली और संगीत का प्रचार किया। इस संगीत सम्मेलन के बाद पंडित जी ने भिन्न भिन्न नगरों में जाकर संगीत सम्मेलन किये जिसमें दिल्ली, बनारस, लखनऊ आदि प्रमुख हैं। पंडित जी ने संगीत के तीन विद्यालय खोले। पहिला-लखनऊ में मैरिस म्यूजिक कालेज, दूसरा—ग्वालियर में माधव संगीत महाविद्यालय तथा तीसरा बड़ौदा में इस प्रकार संगीत का प्रचार खूब हुआ।

ध्यान से देखने पर हम पंडित जी का कार्य चार विभागों में बाँट सकते है।

(१) सबसे पहिला काम जो पं० भातखन्डे जी ने किया वह संगीत कला और शास्त्र का मेल था। आपने प्रचलित व अप्र-

चलित रागों की खोज करके थाट-राग पद्धति में बिठलाया। अर्थात् जनक-जन्य पद्धति को प्रचार में लाया। प्रत्येक राग को थाट से उत्पन्न किया।

(२) दूसरा महत्वपूर्ण कार्य जो भातखन्डे जी ने किया वह यह था कि आपने बड़े बड़े उस्तादों के पास जाकर उनसे उनकी खानदानी चीजों को लेकर इकट्ठा किया। इन सब खानदानी चीजों को आपने "क्रमिक पुस्तक मालिक" के ६ भागों में प्रकाशित किया। इनका यह कार्य बहुत सराहनीय था। इस कारण संगीत में पुरानी चीजें सदैव के लिये रह गयीं।

(३) पंडित जी का तीसरा महत्वपूर्ण कार्य एक नयी नोटेशन पद्धति का बनाना था। आपने एक स्वतन्त्र नोटेशन या स्वर-लेखन पद्धति स्थापित की जो सरल के साथ-साथ वैज्ञानिक भी है। कण स्वर का प्रयोग सबसे प्रथम आपने ही अपनी पद्धति में किया जिसको बाद में विष्णु दिगम्बर पद्धति ने भी अपना लिया।

(४) चौथा कार्य पंडित जी की आधुनिक संगीत शिक्षा पद्धति का है। कुछ लोगों ने पंडित जी के कार्यों की आलोचना भी की पर पंडित जी अपने कार्य में जुटे रहे। थाट-राग पद्धति पर कुछ लोगों ने आक्षेप किया।

आपने अंग्रेजी, संस्कृत, हिन्दी व मराठी भाषाओं में कई पुस्तकें लिखीं। आपके ग्रन्थों के नाम इस प्रकार हैं:—हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति क्रमिक पुस्तक मालिका" (६ भागों में), 'अभिनव राग मंजरी' (संस्कृत) 'हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति' (४ भागों में, मराठी में) 'स्वर मालिका (गुजराती) संगीत इत्यादि।

पंडित जी ने इस प्रकार संगीत की सेवा बड़े परिश्रम से की और १६ सितम्बर सन् १९३६ ई० में परलोक सिधारे।

———

नवम

रागों का पूर्ण

क्रमांक व राग का नाम	थाट	जाति	स्वर	वादी-सम्वादी स्वर	विस्तार सप्तक	राग की प्रकृति
(१) बिलावल	बिलावल	सम्पूर्ण	सब स्वर शुद्ध	ध-ग	मध्य व तार	शान्त
(२) कल्याण	कल्याण	सम्पूर्ण	म तीव्र	ग-नि	मध्य व तार	शान्त
(३) खमाज	खमाज	षाडव-सम्पूर्ण आरोह में रे नहीं लगता	अवरोह में कोमल निषाद	ग-नि	मध्य व तार	चंचल
(४) काफी	काफी	सम्पूर्ण	ग व नि कोमल	प-सा	मध्य व तार	चंचल

Downloaded from www.dralumni.org

अध्याय

परिचय

राग के गाने का समय	आरोहावरोह	पकड़	विशेष विवरण
दिन का प्रथम प्रहर	सा रे ग म प ध नि सां। सां नि ध प म ग रे स	ग म रे, ग प ध नि सां	यह एक शुद्ध राग है कोमल निषाद का प्रयोग वक्र रूप से होता है तब इसे अल्हैया बिलावल कहते हैं। रे पर मध्यम की आस रहती है।
रात्रि का प्रथम प्रहर	सा रे ग म प ध नि सां सां। नि ध प म ग रे स	ग रे सा, नि रे। ग रे सा प म ग रे सा	राग कल्याण में मध्यम शुद्ध का कभी कभी प्रयोग करते हैं तब यह यमनकल्याण कहलाता है।
रात्रि का द्वितीय प्रहर	सा ग म प ध नि सां। सां नि ध प म ग रे स	नि ध, म प ध, म ग	इस राग में दो नि लगती हैं आरोह में शुद्ध व अवरोह में कोमल। कभी दोनों नि साथ भी लेते हैं। इस राग में ठुमरी अधिक गाई जाती है यह शृंगारिक राग है।
रात्रि का द्वितीय प्रहर	सा रे ग म प ध नि सां। सां नि ध प म ग रे स	सा सा रे रे ग ग म म प	कभी कभी इस राग में शुद्ध म व नि लगाते हैं तब यह मिश्र काफी कहलाता है। प म ग रे ऐसा बार बार लिया जाता है।

Downloaded from www.sitarmusic.org

क्रमांक व राग का नाम	थाट	जाति	स्वर	वादी-सम्वादी स्वर	विस्तार सप्तक	राग की प्रकृति
(५) भैरव	भैरव	सम्पूर्ण	रे व ध कोमल	ध-रे	मध्य व तार	शान्त
(६) भैरवी	भैरवी	सम्पूर्ण	रे ग ध नि स्वर कोमल	म-सा	मध्य व तार	चंचल
(७) आसावरी	आसावरी	ओडव-सम्पूर्ण आरोह में ग व नि नहीं लगते	ग ध व नि स्वर कोमल	ध ग	मन्द्र व मध्य	शान्त
(८) मारवा	मारवा	षाडव-षाडव, पंचम वर्जित है	रे कोमल, म तीव्र	रे-ध	मध्य व तार	चंचल

www.pathagar.com www.libraryofpu...

के गाने समय	आरोहावरोह	पकड़	विशेष विवरण
दिन का म प्रहर घप्रकाश)	सा रे ग म प ध नि सा। सां नि ध प म ग रे सा	ग म नि ध नि ध प ग म ग रे ग रे सा	इस राग में रे व ध पर अन्दोलन होता है मध्यम पर अधिक विश्राम नहीं लेना चाहिये।
दिन प्रथम हर	सा रे ग म प ध नि सां। सां नि ध प म ग रे सा	म ग, सा रे सा ध नि सा	यह अत्यन्त मधुर राग है। आजकल इसमें १२ स्वरों को लगाते हैं। कोई इसमें पंचम वादी मानते हैं।
दिन द्वितीय हर	सा रे म प ध सां। सां नि ध म प ग रे सा	म प ध म प ग रे सा	यह जनक रागों में से है। म प ध म प ग रे रे सा यह स्वर समूह बार बार लेते हैं। ग और प की संगति होता है।
शाम संधि-काश राग	। सा रे ग म ध नि सां। सां नि । ध म ग रे सा	। ध म ग रे ग । म ग, रे, सा	इस राग के आरोह में रे वक्र होता है। रे, ग व ध स्वर विशेष महत्व पूर्ण हैं। यह संधिप्रकाश राग है और शाम को गाया जाता है।

क्रमांक व राग का नाम	थाट	जाति	स्वर	वादी-सम्वादी	विस्तार सप्तक	राग की प्रकृति
(९) पूर्वी	पूर्वी	सम्पूर्ण	रे ध कोमल व दानों 'म'	ग-नि	मध्य व तार	शान्त
(१०) तोड़ी	तोड़ी	षाड़व-सम्पूर्ण आरोह में प वर्ज	रे, ग, ध कोमल, म तीव्र	ग-ध	मन्द्र और मध्य	शान्त
(११) सारंग	काफी	ओडव ग, ध वर्जित	आरोह में शुद्ध नि अवारोह नि में कोमल	रे प	मध्य व तार	चंचल
(१२) देस	खमाज	ओडव-संपूर्ण, अरोह में ग, ध वर्जित	दो नि व बाकी स्वर शुद्ध	प-रे	मध्य व तार	शान्त

Digitized from www.gbrauthorary.org.in

राग के गाने समय	आरोहावरोह	पकड़	विशेष विवरण
शाम का संधि-प्रकाश राग	स रे ग म प ध नि सां । सां नि ध प म ग रे सा	नि, सा रे ग । म ग म, ग रे सा	इस राग में दोनों मध्यम का प्रयोग होता है जैसे—प, म ग म ग, शुद्ध मध्यम का प्रयोग न करने से पूरिया धनाश्री राग का भास होता है। इस राग के विशेष स्वर सा, ग, प व नि हैं।
दिन का दूसरा प्रहर	सा रे ग म ध नि सां । सां नि ध प म ग रे ग रे सा	ध नि सा रे ग । रे ग रे सा	इस राग में गन्धार अति कोमल लगता है। पंचम का प्रयोग अल्प होता है तथा मुलतानी राग से बचाने के लिये ध नि सा रे ग रे ग रे सा इस प्रकार बार बार लिया जाता है।
दिन का दूसरा प्रहर	नि सा रे म प नि सां । सां नि प म रे सा	रे म रे, प म रे सा	इस राग के आरोह में शुद्ध नि, व अवरोह में कोमल नि प्रयोग होती है। प रे म रे, अथवा नि प म रे, आदि स्वरों की संगत होती है।
रात्रि का दूसरा प्रहर	सा रे म प नि सां। सां नि ध प म ग रे ग सा	रे म प नि ध प, प ध प म ग रे ग सा	यह राग बहुत मधुर है। तिलक कामोद इसके निकट का राग है। इस राग का स्वरूप अवरोह में स्पष्ट होता है। ध म ग रे, या 'प म ग रे' इस प्रकार स्वर आते हैं।

Downloaded from www.chandrakantha.com

क्रमांक व राग का नाम	थाट	जाति	स्वर	वादी व-सम्वादी स्वर	विस्तार सप्तक	राग की प्रकृति
१३. बागेश्री	काफी	ओडव-संपूर्ण, आरोह में रे, वर्जित	ग व नि कोमल अन्य स्वर शुद्ध	म-सा	मन्द्र व मध्य	शान्त
१४. भीमपलासी	काफी	ओडव-संपूर्ण, आरोह में रे ध वर्जित	ग व नि कोमल बाकी स्वर शुद्ध	म-सा	मन्द्र व मध्य	शान्त
१५. पीलू	काफी	ओडव-संपूर्ण आरोह में रे व ध वर्जित	दो ग, दो नि व दो ध लगते हैं बाकी स्वर शुद्ध	ग-नि	मन्द्र व मध्य	क्षुद्र
१६. शिवरंजनी	बिलावल	ओडव-संपूर्ण, आरोह में रे व ध वर्जित	सब स्वर शुद्ध	ग-नि	मन्द्र व मध्य	गम्भीर

www.vishvabharatiyoga.com

ग के गाने का समय	आरोहावरोह	पकड़	विशेष विवरण
मध्य रात्रि	नि सा ग म ध नि सां। सां नि ध म प ध म ग रे सा	सा नि ध नि सा म, ग रे सा	कुछ लोग बा गेश्री राग के अवरोह में प' को वर्ज करते हैं और षाडव जाति मानते हैं। ध म या रे ग म ग रे सा आदि स्वर अधिक आते हैं।
दिन का तीसरा प्रहर	नि सा ग म प नि सां। सां नि ध प म ग रे सा	नि सा म म ग प म ग म ग रे सा	इस राग में म व' नि स्वरों पर ठहरते हैं जैसे नि सा म, या ग म प नि प पञ्चम पर अधिक नहीं ठहरना चाहिये इसमें राग बदलने का डर रहता है।
दिन का तीसरा प्रहर	नि सा ग म प ध प नि सां। सां नि ध प म प ग रे नि सा	नि सा ग नि सा प ध नि सा	इस राग में १२ स्वरों के लगाने का प्रचार है इससे यह घन राग कहा जाता है। इसमें अधिकतर ठुमरी गायन होता है।
रात्रि का द्वितीय प्रहर	नि सा ग म प नि सां। सां नि ध प म ग रे सा	नि सा ग म प, ग म ग,	इस राग में पंचम के सहारे मध्यम तीव्र का प्रयोग भी होता है जैसे प म ग म ग कुछ लोग इसे बिलावल थाट का न मान कर यमन थाट का मानते हैं।

क्रमांक व राग का नाम	थाट	जाति	स्वर	वादी-सम्वादी	विस्तार सप्तक	रागकी प्रकृति
१७ भूपाली	कल्याण	औडव-औडव, म व नि वर्जित	सब स्वर शुद्ध	ग—ध	मन्द्र व मध्य	शान्त
१८ हमीर	कल्याण	षाडव-संपूर्ण, में प आरोह	दोनों म और बाकी स्वर शुद्ध	ध—ग	मध्य व तार	गम्भीर
१९ केदार	कल्याण	औडव-षाडव आरोह में रे व, ग व ज अवरोह में ग व ज	दोनों 'म' अन्य स्वर शुद्ध	म—सा	मन्द्र व मध्य	गम्भीर
२० कामोद	कल्याण	वक्र-संपूर्ण	दोनों म अन्य स्वर शुद्ध	प—रे	मध्य व तार	चंचल

Downloaded from www.dbraulibrary.org.in

के गाने का समय	आरोहावरोह	पकड़	विशेष विवरण
त्रि का म प्रहार	सा रे ग प ध सां सांध प ग रे सा	ग रे सा ध सा रे ग प ग ध प ग रे सा	कुछ लोग इसे कल्याण थाट का न मान कर बिलावल थाट का मानते हैं। भूपाली राग करुणा व शृंगार रस प्रधान है।
त्रि का म प्रहर	सा रे सा, ग मध, निध सां। सां निधप म प ध प ग म रे सा	सा रे सा, ग म ध	यद्यपि इस राग के आरोह में 'प' वर्जित है परन्तु तीव्र म; के साथ उसका प्रयोग होता है। जैसे 'म प धनिसां' कभी कभी कोमल नि का प्रयोग करते हैं।
रात्रि का दूसरा प्रहर	सा म, मपधप, निधसां। सांनिधप । म पधप, म, म रे सा	सा म, म प ध प म रे सा	इस राग में कभी कभी कोमल नि का प्रयोग भी होता है जैसे 'ध नि धप म' हमीर व कामोद रागों से इसे बचाना चाहिये।
त्रि का दूसरा प्रहर	। सा रे प, मपधप, निधसां। सांनिधप । मपधप, गमप गम रे सा	सा म रे प, गम प ग म रे सा	रे व प की संगति इस राग में बहुत सुन्दर मालूम पड़ती है। कभी कभी कोमल नि का प्रयोग होता है।

Downloaded from www.dli.ernet.in

क्रमांक व राग का नाम	थाट	जाति	स्वर	वादी-सम्वादी स्वर	विस्तार सप्तक	राग की प्रकृति
२१ मालकोस	भैरवी	औडव-औडव रे व प वर्जित	ग, ध, नि स्वर कोमल होते हैं	म—सा	मन्द्र व मध्य	शान्त
२२ जौनपुरी	आसावरी	षाडव-संपूर्ण आरोह में ग वर्ज है	ग ध नि स्वर कोमल	ध—ग	मध्य व तार	गम्भीर
२३ गोड़सारङ्ग	कल्याण	वक्र षाडव-वक्र संपूर्ण	दोनों म	ग—ध	मन्द्र व मध्य	शान्त
२४ तिलक-कामोद	खमाज	औडव-संपूर्ण आरोह में ग व ध वर्जित	दो निषाद अन्य स्वर शुद्ध	सा—प	मन्द्र व मध्य	चंचल

www.digitallibrary.org

राग के गाने का समय	आरोहावरोह	पकड़	विशेष विवरण
रात्रि का दूसरा प्रहर	सा ग म ध नि सां। सां नि ध म ग सा	ध नि सा म ग म ग सा	इस राग में ग, ध, नि स्वरों पर अन्दोलन होता है। मध्यम स्वर का बहुत महत्व है। प्राचीन ६ रागों में से यह एक है।
दिन का दूसरा प्रहर	सा रे म प ध नि सां। सां नि ध प म ग रे सा	म प ध म प ग रे म प	यह राग आसावरी से बहुत मिलता है। केवल अंतर यह है कि इस के आरोह में 'नि' का प्रयोग होता है।
दिन का दूसरा प्रहर	सा ग रे म ग प। म ध प नि ध सां। सां नि ध प। म प म ग, म रे ग प रे सा	। म प ध म प ग म ग रे म ग	इस राग का आरोह व अवरोह वक्र होता है इससे यह छायानट राग से बच जाता है। 'ग रे' की संगति अच्छी लगती है।
रात्रि का दूसरा प्रहर	सा, रे म प ध म प सां। सां प ध म ग सा रे ग सा	प नि सा रे ग सा रे प म ग सा रे ग सा	इस राग को देश राग से बहुत बचाना चाहिये व तिलंग और खमाज भी इसके निकट के राग हैं कोमल नि का प्रयोग अवरोह में करते हैं।

क्रमांक व राग का नाम	थाट	जाति	स्वर	वादी-संवादी	विस्तार सप्तक	राग की प्रकृति
२५ बहार	काफी	षाडव-षाडव आरोह में रे ग व अवरोह में ध वर्ज	दोनों नि, ग कोमल बाकी स्वर शुद्ध	म-सा	मध्य। व तार	चंचल
२६ दरबारी कान्हड़ा	आसावरी	संपूर्ण-षाडव अवरोह में ध व ग वर्ज	ग, ध, नि स्वर कोमल	रे-प	मन्द्र व मध्य	गंभीर
२७ वसन्त	पूर्वी	औडव-संपूर्ण आरोह में रे, प वर्ज	रे व ध कोमल, दोनों मध्यम	सां-प	मध्य व तार	शांत
२८ दुर्गा	खिलावल	औडव, ग नि वर्ज	सब स्वर शुद्ध	म-सा	मन्द्र व मध्य	चंचल

ग के गाने का समय	आरोहावरोह	पकड़	विशेष विवरण
रात्रि का सरा प्रहर	नि सा ग म प ग म ध नि सां सां नि प म प ग म रे सा	म प ग म नि ध नि सां	इस राग के आरोह में शुद्ध नि व अवरोह में कोमल नि लगती है। राग का चलन वक्र है बसन्त ऋतु में इसे अधिक गाते हैं।
रात्रि का सरा प्रहर	सा रे ग म प ध ध नि सां। सां ध नि प म प ग म रे सा	रे ग रे सा, ध नि प म प सा	इस राग के अरोह में ग दुर्बल है और ध पर अन्दोलन होता है। अवरोह में ध वर्ज करके 'नि प' की संगति होती है।
रात्रि का चौथा प्रहर	। सा ग म ध रें' सां। सां नि ध । प म ग म ग रे सा	। म ग म ध रें सा	आरोह में प वर्ज है इससे 'म ध रें सां' अधिक कहते हैं। शुद्ध म का प्रयोग इस राग में करते हैं 'सा म म ग' कभी कभी एक साथ दोनों म आते हैं।
रात्रि का दूसरा प्र	सा रे म प ध सां। सां ध प म रे सा रे प सा	ध, म रे स रे द सि	इस राग का अवरोह वक्र होता है। ध म, रे प या रे ध आदि स्वरों की संगत होती है। खमाज थाट का दुर्गा भी प्रसिद्ध है जिसमें र, प वर्ज है।

क्रमांक व राग का नाम		जाति	स्वर	वादी-सम्वादी	विस्तर सप्तक	राग की प्रकृति
२९ गौड़-मल्हार	खमाज	संपूर्ण	दोनों नि बाकी स्वर शुद्ध	म-सा	मन्द्र व मध्य	शांत
३० कालिंगड़ा	भैरव	संपूर्ण	रे ध कोमल बाकी स्वर शुद्ध	प-स	मन्द्र व मध्य	शांत
३१ जय-जयवन्ती	खमाज	पूर्ण	दोनों ग, दोनों नि लगते हैं बाकी स्वर शुद्ध	रे-प	मन्द्र व मध्य	शांत
३२ शंकरा	बिलावल	औडव-षाडव मध्यम वर्जित, आरोह में रे वर्ज	सब स्वर शुद्ध	ग-नि	मध्य व तार	गंभीर

Downloaded from www.dbraulibrary.org.in

...के गाने समय	आरोहावरोह	पकड़	विशेष विवरण
...त्रि का ...ा प्रहर, ...र्षा ऋतु	सा रे ग म, म प ध नि सां। सां ध नि प म, ग रे ग रे सा	रे ग म, म प ध प म ग	इस राग की उत्पत्ति गौड़ और मल्हार रागों के मिश्रण से हुयी है। इस की गति वक्र है बिलावल व खमाज से मिलता है। कोई कोई ग कोमल भी प्रयोग करते हैं।
रात्रि क ...ा प्रहर	सा रे ग म प ध नि सां। सां नि ध प म ग रे सा	ध प, ग म ग, नि, सा रे ग, म,	भैरव की तरह इस राग में रे ध स्वरों पर आन्दोलन नहीं होता। कभी कभी कोमल नि का प्रयोग होता है। राग का मुख्य स्वरूप इस प्रकार है :— ध ध प ध म प ग म ग रे सा
रात्रि का ...सरा प्रहर	सा रे रे, रें ग रे सा नि ध प, रे, ग म प नि सां। स नि ध प, ध म, रे ग रे सा।	रे ग रे सा नि सा ध नि रे	यह राग बहुत मधुर है। इसे दो अंगों से गाने का प्रचार है। कुछ लोग इसे देश अंग से गाते हैं और कुछ लोग इसे बागेश्री अंग से गाते हैं। यह राग 'परमेल प्रवेशक' राग है।
रात्रि ...ा दूसरा पहर	सा ग प निध सां। सां नि प निध सां नि प ग प ग सा	सां निप निध सां नि प ग प ग सा	इस राग में गन्धार पर रे का कण लगता है जैसे ग प रे ग रे सा। तथा प नि ध, सां नि यह स्वर अधिक प्रयोग किये जाते हैं।

Downloaded from www.vidyarthi.com

क्रमांक व राग का नाम	थाट	जाति	स्वर	वादी-सम्वादी स्वर	विस्तार सप्तक	राग की प्रकृति
३३ श्री	पूर्वी	षाडव-सम्पूर्ण आरोह में 'ग' वर्जित है।	रे, ध स्वर कोमल और म तीव्र	रे-प	मध्य व तार	शांत
३४ सोहनी	मारवा	षाडव, प वर्जित	रे कोमल और म तीव्र	ध-ग	मध्य व तार	चंचल
३५ देशकार	बिलावल	औडव म, नि वर्जित	सब स्वर शुद्ध	ध-ग	मध्य व तार	शांत

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राग के गाने का समय	आरोहावरोह	पकड़	विशेष विवरण
शाम का संधि-प्रकाश राग	। सा रे रे सा म प नि सां । सां । नि ध प म । ध प म ग रे रे ग रे सा	। रे रे प म ध प । म ग रे ग रे सा	आरोह में इस राग में सा रे प स्वर बहुत लिए जाते हैं। रे स्वर पर अन्दोलन होता है कुछ लोग इसमें वादी-सम्वादी प और सा मानते हैं।
रात्रि का तीसरा पहर	। सा ग म ध नि सां । सां नि । ध म ग रे सा	। सां नि ध म । ग म ध नि सा रे सा	इस राग को तार सप्तक में अधिक गाया जाता है। नीचे रागभीरता लाकर गाने से पूरिया होने का डर रहता है। । म ध नि सा रे सां यह स्वर अधिक आते हैं।
दिन का दूसरा पहर	सा रे ग प ध सां । सां ध प ग रे सा	ध प ग प ग रे सा	भूपाली से इस राग को बहुत बचाना चाहिये अलाप में न्यास धैवत पर करना चाहिए। यह उत्तराग प्रधान है।

क्रमांक व रागका नाम	थाट	जाति	स्वर	वादी-सम्वादी	विस्तार सप्तक	रागकी प्रकृति
३६ रामकली	भैरव	संपूर्ण	रे, ध कोमल व दो मध्यम	प-स	मध्य व तार	गंभीर
३७ अड़ाना	आसावरी	षाडव, आरोह में 'ग' वर्ज, अवरोह में ध वर्ज है	ग, ध कोमल, दो निषाद	सां-प	मध्य व तार	चंचल
३८ शुद्ध-कल्याण	कल्याण	औडव—संपूर्ण, आरोह में म, नि वार्जित हैं	अवरोह में म तीव्र बाकी स्वर शुद्ध	ग-ध	मन्द्र व मध्य	गम्भीर
३९ हिंडोल	कल्याण	औड़व, प, रे वर्जित	म तीव्र बाकी स्वर शुद्ध	ध-ग	मध्य व तार	गम्भीर

Downloaded from www.dbraulibrary.org.in

...ों के गाने का समय	आरोहावरोह	पकड़	विशेष विवरण
...त: काल	सा ग म प ध नि सां । सां नि ध प म प ध नि ध प ग म रे सा	ध प, म प, ध नि ध प ग, म रे सा	रामकली राग में म प ध नि ध प ग म रे सा स्वर बार बार कहे जाते हैं। भैरव से इस राग को बचाना चाहिए
...रात्रि का तीसरा प्रहर	सा रे म प ध नि सां । सां ध नि प म प ग म रे सा	सां ध नि सां ध नि प म प ग म रे सा	इस राग के आरोह में शुद्ध नि और अवरोह में कोमल नि लगती है। अवरोह में ध वक्र होता है जैसे सां ध नि प या ध नि सां रे नि सा, ध नि प यह स्वर अधिक आते हैं।
...त्रि का दूसरा प्रहर	सा रे ग प ध सां । सां नि ध प म ग रे सा	ग, रे सा, नि ध प, सा, ग रे प रे सा	इस राग के आरोह में भूपाल और अवरोह में कल्याण की रूप है इसीलिये कुछ लोग इसे भूप-कल्याण भी कहते हैं। सां नि ध प, ग प प रे सा ऐसा बहुत आता है।
...त्रि का तीसरा प्रहर	सा ग म ध नि ध सां । सां नि ध म ग सा	सा ग म ध नि ध म ग सा	यह राग उत्तरांग प्रधान है। सोहनी राग से इसे बचाना चाहिये। आरोह में नि वक्र है। यह प्राचीन ६ रागों में से है।

क्रमांक व राग का नाम	थाट	जाति	स्वर	वादी-संवादी	विस्तार सप्तक	राग की प्रकृति
४० छायानट	कल्याण	सम्पूर्ण	दो मध्यम कभी कोमल नि का प्रयोग भी होता है	प-रे	मन्द्र व मध्य	शान्त
४१ ललित	मारवा	षाड़व, प वर्जित	रे कोमल व दोनों मध्यम	म-सा	मन्द्र व मध्य	गम्भीर
४२ पूरिया	मारवा	षाड़व, प वर्जित	म तीव्र बाकी स्वर शुद्ध	ग-नि	मन्द्र व मध्य	गंभीर

CC-0. Prof. Satish Chandra Vidyarthi Collection. http://www.mgahvbraulibrary.org

ग के गाने का समय	आरोहावरोह	पकड़	विशेष विवरण
ात्रि का थम प्रहर	सा रे, ग म प नि ध, सां सां नि ध प, । म प ध प, ग म रे सा	प रे, ग म प, म ग म, रे सा	इस राग में प रे की संगत होती है। कमोद से यह इसी प्रकार बचाया जाता है कोमल नि का प्रयोग इस प्रकार करते हैं—म नि ध प रे रे ग म प।
रात्रि का अंतिम प्रहर	। नि रे ग म म । म ग, म ध सां। रें । । नि ध, म ध म म ग रे सा	नि रे ग म, ध । । म ध म म, ग	इस राग को गाने के दो मत है कुछ लोग इसे मारवा थाट से गाते हैं जिसका यह क्रम न किया गया है तथा कुछ लोग इसे पूर्वी थाट से गाते है। पूर्वी थाट से गाने वाले इसमें धैवत कोमल लगाते हैं जिससे मधुरता अधिक आ जाती है। दोनो मध्यम का प्रयोग इसमें बहुत सुन्दर लगता है।
रात्रि का दूसरा प्रहर	। नि रे सा, ग म ध नि रें सां सां । नि, ध म ग रे सा	ग, नि रे सा, । नि ध नि, म ध रे सा	यह राग पूर्वांग प्रधान है इसमें ग नि और म नि स्वरों की जोड़ियां ली जाती हैं। जैसे ग । । नि रे सा, म ध नि म ग मारवा से इसे बचाना चाहिये धैवत पर अधिक न ठहर, के निषाद पर अधिक ठहरना चाहिये।

राग का नाम	थाट	जाति	स्वर	वादी-सम्वादी	विस्तार सप्तक	राग की प्रकृति
४३ पूरिया-धनाश्री	पूर्वी	संपूर्ण	रे, ध कोमल म तीव्र	प-रे	मध्य व तार	शांत
४४ परज	पूर्वी	संपूर्ण	रे ध कोमल, दो मध्यम	सा-प	मध्य व तार	चंचल

Digitized from www.pustakalibrary.org

राग के गाने के समय	आरोहावरोह	पकड़	विशेष विवरण
...ख्याकाल	। नि रे ग म प ध प नि सां । रें नि । । ध प म ग म रे ग रे सा	। नि रे ग, म प, । । ध म ग म रे । ग, ध म ग रे सा	यह राग पूर्वी से बहुत मिलता है लेकिन इसमें शुद्ध मध्यम का प्रयोग नहीं होता। । । म ग म रे ग ऐसा बार बार कहना चाहिये।
रात्रि का अन्तिम प्रहर	। नि सा ग, म ध नि सां सां नि । ध प म प ध प ग म ग, म ग रे सा	। सां नि ध प, म प ध प ग म ग	इस राग की जाति के बारे में मतभेद है। कुछ लोग षाडव-सम्पूर्ण मानते हैं और रे आरोह में वर्जित करते हैं। बसन्त से यह राग मिलता है परन्तु इसमें ध प ग म ग, । म ध नि सां आता है। ऊपर के टुकड़े से कुछ कालिंगड़ा राग का भी भास होता है। सां रें सा रे नि ध नि यह स्वर प्रयोग में अधिक आते हैं।

क्रमांक व राग का नाम	थाट	जाति	स्वर	वादी-सम्वादी स्वर	विस्तार सप्तक	राग की प्रकृति
४५ मुलतानी	तोड़ी	ओडव-संपूर्ण आरोह में रे, ध वर्ज	रे, ग, ध कोमल म तीव्र	प—सा	मध्य व तार	गम्भीर
४६ पटदीप	काफी	ओडव-संपूर्ण आरोह में रे, ध वर्ज	ग कोमल बाकी स्वर शुद्ध	प—सा	मध्य व तार	शान्त
४७ सिन्दूरा	काफी	ओडव संपूर्ण, आरोह में ग, नि वर्ज	ग कोमल दो 'नि'	सा—ग	मध्य व तार	चंचल

के गाने समय	आरोहावरोह	पकड़	विशेष विवरण
न का न्तम हर	। नि सा ऱ म प नि सां । सां नि ध प म ग रे सा	। नि सा म ग प ग रे स	इस राग को तोड़ी राग से बचाना चाहिये। सा, ऱ, नि स्वर महत्वपूर्ण हैं ध प, । । ग म ग, म ग रे सा ऐसा कहा जाता है। आरोह में— । नि सा ग म प कहते हैं।
सायंकाल	नि सा ग म प नि सां । सां नि ध प म ग रे सा	ग म ग रे सा नि सा ग रे सा	भीमपलासी राग से इसे बहुत बचाना चाहिये क्योंकि नि कोमल लग जाने से यह भीमपलासी हो जाता है कभी कभी आरोह में धैवत का प्रयोग करते हैं— ध म प नि, नि सां ध नि सां ध प।
सायंकाल	सा रे म प ध सां । सां न ध प म ग रे म ग रे सा	म प ध सां रें ग रे सा	राग काफी और बागेश्री के मिश्रण से इस राग की उत्पत्ति होती है। आरोह में दुर्गा राग का भी भास होता है म ग, रे म ग रे सा यह टुकड़ा बहुत लगता है।

क्रमांक व राग का नाम	थाट	जाति	स्वर	वादी-सम्वादी स्वर	विस्तार सप्तक	राग की प्रकृति
४८ रागेश्री	काफी	औडव-षाडव प वर्जित है आरोह में रे नहीं लगता	दो निषाद बाकी स्वर शुद्ध	ग—ध	मध्य व तार	गम्भीर
४९ देशी	आसावरी	औडव-षाडव आरोह में ग, ध वर्जित अवरोह में म वर्जित	ग, नि कोमल, दो धैवत	प—रे	मध्य व तार	शान्त
५० मलगु जी	काफी	षाडव-संपूर्ण आरोह में प नहीं लगता	दो गन्धार व दो निषाद लगते हैं	म—सा	मध्य व तार	शान्त

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

के गाने का समय	आरोहावरोह	पकड़	विशेष विवरण
त्रि का रा प्रहर	सा ग म ध नि सां। सां नि ध नि ध म ग म रे सा	ग म रे सा नि ध नि सा ग म	बागेश्री में कोमल गन्धार न लगने से इस राग को उत्पत्ति होती है। ध नि सा ग म यहाँ पर मालगुंजी की झलक आती है। परन्तु ग म, ध म ग म रे सा कहने से राग की प्राप्ति होती है
दिन का सरा प्रहर	सा रे म प ध म प नि सा। सां प ध म प रे ग सा रे नि सा।	रे म प रे ग सा रे नि सा	यह राग बहुत मधुर है। कभी कभी कोमल धैवत का प्रयोग इस प्रकार करते हैं— सां प ध प म प। अवरोह में सां प ध म प रे ग सा रे नि सा इस प्रकार सा से प पर आते हैं। रे ग सा रे नि सा यह टुकड़ा बार बार आता है।
त्रि का सरा प्रहर	सा रे ग म, ध नि सां। सां नि ध प म ग म, ग रे सा	ग म ग रे सा नि ध नि सा ग म	यह राग जैजैवन्ती और बागेश्री से बहुत मिलता है। आरोह में सा रे म प ध, ध या ध प म ग म। अवरोह में म ध म ग रे सा कहते हैं। ध नि सा ग म यह टुकड़ा बार बार लेते हैं।

दशम अध्याय

पाश्चात्य स्वर-सप्तक की रचना

पाश्चात्य स्वर सप्तक की रचना सरल गुणान्तर तथा मधुर स्वर-सम्वाद (Harmony) के नियमों पर आधारित है। अतएव इस रचना को समझने के लिये इन दोनों का समझ लेना आवश्यक है।

सरल गुणान्तर—पाश्चात्य संगीत विद्वानों ने यह मालूम किया कि स्वरों को अन्दोलन संख्याओं के आपस के गुणान्तर अर्थात दोनों की अन्दोलन संख्याओं का एक दूसरे में भाग देने से जो गुणान्तर आता है वह सरल व सीधा होता है। यह गुणान्तर दो प्रकार से हो सकता है (१) प्रत्येक स्वर का षडज से अलग अलग गुणान्तर (२) तथा पास पास के दो स्वरों का आपसी गुणान्तर जैसे, सा का रे से रे का ग से इत्यादि। अब नीचे पहिले सातों स्वरों की अन्दोलन संख्यायें दी जाती हैं—

सा	रे	ग	म	प	ध	नि	सां
२४०	२७०	३००	३२०	३६०	४००	४५०	४८०

प्रत्येक स्वर का षडज के सम्बन्ध में गुणान्तर इस प्रकार है—

सा	रे	ग	म	प	ध	नि	सां
१	९/८	५/४	४/३	३/२	५/३	१५/८	२

त्येक स्वर में आपस का गुणान्तर इस प्रकार है:—

रे	ग	म	प	ध	नि	सां
९/८	१०/९	१६/१५	९/८	१०/९	९/८	१६/१५

स्वर-सम्वाद—(Harmony) जब दो या दो से अधिक स्वरों को एक साथ मधुर भाव से उत्पन्न किया जाता है तो वह स्वर-संवाद कहलाता है। पाश्चात्य संगीत में आपस में मिलाप करने वाले स्वरों को, जो सुनने में मधुर लगते हैं एक साथ उत्पन्न करते हैं तथा इनके मिलाप से जो माधुर्य उत्पन्न होता है उसे स्वर-संवाद या हामनी (Harmony) कहते हैं। हामनी की विशेषता यह रहती है कि स्वरों को सजाने के लिये अनेक तारों की सहायता से उनमें रोचकता उत्पन्न की जाती है। उदाहरण के लिये यदि तानपूरे का पहला तार पंचम स्वर से मिला हो तथा दूसरा तार षड्ज स्वर से मिला हो अब इन दोनों तारों को एक साथ छेड़ने से जो माधुर्य उत्पन्न होगा वही हार्मनी या स्वर-संवाद कहलाता है। इसी प्रकार अनेक वाद्यों में एक ही समय में विभिन्न स्वर, जो आपस में मधुर हैं उत्पन्न किये जाते हैं।

पाश्चात्य संगीत में स्वर संवाद (Harmony) का अत्यधिक विकास हुआ है। जिस प्रकार हिन्दुस्तानी संगीत में राग (Melody) अथवा विभिन्न स्वरों को क्रमशः उत्पन्न करने में मधुरता आती है उसी प्रकार पाश्चात्य संगीत में मधुरता की दृष्टि से अनेक स्वरों को एक साथ उत्पन्न करते हैं। जब एक गीत अथवा धुन को सजाने के लिये, उससे मेल खाने वाले स्वरों को एक साथ बजाते हैं तब सरल हामनी (Simple Har-

mony) होती है। परन्तु जब एक समय में ही एक धुन (tune) को या गीत को अनेक मेल खाने वाले स्वरों को षडज मानकर बजाते अथवा गाते हैं तो उससे जो मधुरता उत्पन्न होती है उसे काउन्टर पाइन्ट (Counter point) कहते हैं। यह स्वर संवाद या हार्मनी (Harmony) का अधिक विकसित रूप है। उदाहरण के लिये यदि चार गायक क्रमशः सा, ग, म और प स्वरों को अपना अपना षडज मान कर कोई एक गीत एक साथ गायें तो इससे जो मधुरता उत्पन्न होगी वही (Counterpoint) कहलाती है। यह हार्मनी का प्रकार अधिक विकसित व पांडित्यपूर्ण है।

सप्तक के ७ स्वरों में सा—प स्वरों का संवाद मधुर तथा श्रेष्ठ होता है। इन दो स्वरों का गुणान्तर $\frac{३}{२}$ का है। सा—प के संवाद को षडज-पञ्चम भाव भी कहते हैं। दूसरा संवाद जो सप्तक के ७ स्वरों में होता है वह सा—म स्वरों का है इन दो स्वरों के आपस का गुणान्तर $\frac{४}{३}$ का है। इस संवाद को षडज-मध्यम भाव भी कहते है। तीसरा संवाद जो सप्तक के ७ स्वरों में होता है वह सा—ग स्वरों का है। इन दो स्वरों का आपस का गुणान्तर $\frac{५}{४}$ का है। इस संवाद को षडज-गन्धार भाव कहते हैं।

सप्तक के इन तीनों संवादों में सा—प स्वरों का संवाद सबसे श्रेष्ट तथा मधुर होता है तथा सा—म और सा—ग स्वरों का संवाद, सा—प स्वरों के संवाद से कम मधुर होता है। इसलिये इन्हें कनिष्ट स्वर-संवाद कहना ठीक है।

स्वरान्तर

पाश्चात्य संगीत में पास-पास के स्वरों का आपसी अन्तर (interval) टोन (tone) के अधार पर होता है। जिस

भारतीय संगीत में स्वरान्तर श्रुतियों के आधार पर होता
ी प्रकार पाश्चात्य संगीत में स्वरान्तर टोन के आधार पर
है। केवल तीन स्वरान्तर वहाँ प्रचलित हैं:—

(१) मेजर-टोन—(Major-tone —सप्तक के स्वरों
गुणान्तर जो सा—रे, म—प और ध-नि स्वरों में हैं मेजर
(Major-tone) कहलाता है। वास्तव में चतुः श्रुतिक
र अर्थात जिन स्वरों में अपने यहाँ चार श्रुतियों का अन्तर
है, उसे मेजर टोन कहते हैं।

(२) माइनर-टोन—(Minor-tone)—सप्तक के स्वरों
गुणान्तर जो रे-ग और प—ध स्वरों में हैं माइनर-टोन
inor-tone) कहलाता है। वास्तव में त्रि-श्रुतिक अन्तर
र्थात जिन स्वरों में तीन श्रुतियों का अन्तर होता है, उसे
इनर टोन कहते हैं।

(३) सेमी-टोन(Semi-tone) :—सप्तक के स्वरों में
गुणान्तर जो ग-म और नि सां स्वरों में हैं, सेमीटोन (Semi-
ne) कहलाता है। पाश्चात्य संगीत में सप्तक के १२ शुद्ध
ा विकृत स्वरों में आपस में एक एक सेमीटोन (Semitone)
अन्तर होता है। वास्तव में भारतीय संगीत के हिसाब से
ीटोन में दो श्रुतियों का अन्तर होता है जैसे शुद्ध ग और शुद्ध
में अथवा शुद्ध नि और तार सा में।

ऊपर लिखे गये तीन स्वरान्तरों में से प्रथम दो अर्थात
र टोन (Major-tone) व माइनर टोन (Minor-tone)
होल टोन (whole tone) भी कहते हैं अर्थात मेजर-टोन
माइनर टोन को पृथक-पृथक होल-टोन के नाम से भी पुकारते
। कभी कभी इन्हें केवल टोन (tone) कह कर संबोधित करते

है। इस प्रकार सप्तक के शुद्ध स्वरों में स्वरान्तर इस प्रकार हुआ।

सा—रे—ग—म—प—ध—नि—सां।
T T s T T T s

यहाँ पर सा—रे में मेजरटोन, रे—ग में माइनर टोन, ग—म में सेमीटोन, म—प में मेजर टोन प—ध में माइनर टोन, ध—नि में मेजर-टोन तथा नि—सां में सेमी-टोन का अन्तर है।

सच्चा स्वर-सप्तक (Diatonic Scale) ऊपर बतलाये गये ७ शुद्ध स्वरों को पाश्चात्य संगीत में Diatonic scale (डायटॉनिक स्केल) के नाम से पुकारा जाने लगा। वास्तव में इस सप्तक में गुणान्तरों के हिसाब से दो गुणान्तर होल टोन (Whole Tone) के थे जो क्रमशः $\frac{9}{8}$ यानी Mojor- Whole-tone तथा $\frac{10}{9}$ यानी Minor-whole-tone के थे। इसी कारण इस सप्तक को Diatonic Scale अथवा दो होल टोन वाला सप्तक कहने लगे। अंग्रेजी में डाय (dia) के अर्थ "दो" के हैं।

आगे चल कर इस सप्तक में ७ शुद्ध स्वरों के साथ ५ विकृत स्वर और मिला दिये गये। इस तरह अब कुल मिलाकर १२ स्वर इस सप्तक में हो गये। इन १२ स्वरों में से सात तो पहिले वाले शुद्ध स्वर थे तथा ५ स्वर, रे, ग, म, ध, नि स्वरों के विकृत रूप थे। नीचे Diatonic Scale के १२ स्वरों की अन्दोलन संख्यायें उनके गुणान्तरों के साथ दी जाती है :—

सा, रे, रे, ग, ग, म, मा, प, ध, ध, नि, नि, सां
२४०, २५६, २७०, २८८, ३००, ३२०, ३३७½, ३६०, ३८४, ४००, ४२७, ४५०, ४८०,

सम-विभागीय-सप्तक (Equally-tempered-Scale)

पाश्चात्य विद्वानों ने Diatonic scale के १२ शुद्ध तथा विकृत स्वरों का एक हार्मोनियम बनाया। इस हार्मोनियम के स्वर उनकी अन्दोलन संख्याओं व गुणान्तरों के हिसाब से ही रक्खे गये थे। इस हार्मोनियम के बन जाने से सबसे बड़ी असुविधा यह हुई कि प्रत्येक मनुष्य इसके स्वर से नहीं गा सकता था क्योंकि सब मनुष्यों, स्त्रियों व बच्चों की आवाज़ एक सी नहीं होती है। यदि कोई मनुष्य २४० फ्रीक्वेनसी के 'सा' को छोड़कर किसी अन्य स्वर को अपने कन्ठ का मध्य 'सा' मानता था तो आगे सारे स्वर गड़बड़ व अशुद्ध हो जाते थे। उदाहरण के लिये यदि शुद्ध 'रे' को मध्य 'सा' (middle) माना जाय तो शुद्ध 'ग' पर शुद्ध रे आता है। परन्तु यह स्वर अशुद्ध लगेगा क्योंकि रे और ग का गुणान्तर $\frac{9}{8}$ है जबकि 'सा' के बाद 'रे' कहने के लिये $\frac{10}{9}$ गुणान्तर होना चाहिये। इस प्रकार बड़ी दिक्कत का सामना करना पड़ता था क्योंकि २४० फ्रीक्वेनसी के 'सा' को छोड़कर किसी अन्य स्वर को मध्य 'सा' नहीं मान सकते थे।

इन सब असुविधाओं को देखते हुये पाश्चात्य विद्वानों ने एक नया तरीका अपनाया। उन्होंने एक सप्तक को १२ बराबर बराबर भागों में विभाजित कर दिया और प्रत्येक स्वर की आपस की दूरी (interval) को इस प्रकार बराबर कर दिया। उदाहरण के लिये 'सा' से कोमल 'रे' का अन्तर अब उतना ही हो गया जितना शुद्ध 'रे' का कोमल 'ग' से, कोमल 'ग' का शुद्ध 'ग' से या 'प' का कोमल 'ध' से इत्यादि। कहने का अर्थ यह है कि सप्तक के १२ स्वर अब बराबर के गुणान्तर पर हो गए। अब इन १२ स्वरों के सप्तक को सम-विभागीय सप्तक या Equally Tempered Scale कहते हैं।

इस (Equally temperedScale) सप्तक के बन जाने से सबसे बड़ा लाभ यह हुआ कि अब सप्तक के किसी भी स्वर को 'सा' माना जा सकता है और प्रत्येक मनुष्य अपने कण्ठ के हिसाब से गा व बजा सकता है। स्वरों का एक दूसरे से बराबर की दूरी पर होने के कारण यह लाभ हुआ। परन्तु इस पद्धति में सबसे बड़ा दोष जो है वह यह है कि इन १२ स्वरों में कोई भी स्वर स्वाभाविक (Natural) नहीं है। वास्तव में इन १२ स्वरों की अन्दोलन सख्यायें भी बदल गईं क्योंकि (Diatonic Scale) के स्वरों में और Equally Tempeed Scale के स्वरों में अन्तर होना स्वाभाविक ही है। यह पद्धति आजकल हामोनियम, ऑरगन व पिआनों आदि वाद्यों में चल रही है।

पाश्चात्य स्वर-मेल तथा स्वर-समुदाय

(Western Scales and chords)

जिस प्रकार भारतीय संगीत में १० थाट माने जाते हैं उसी प्रकार पाश्चात्य संगीत में केवल दो मेल या सप्त-स्वर-समूह (Scale) माने जाते हैं। यह दो मेल इस प्रकार हैं:—

(१) मेजर-स्केल (Major Scale):—इस थाट में सब स्वर शुद्ध होते हैं। इन स्वरों में परस्पर अन्तर टोन तथा सेमीटोन के आधार पर इस प्रकार होता है :—

सा—रे—ग—म—प—ध—नि—सा

T T s T T T s

(२) माइनर-स्केल (Minor Scale):—माइनर स्केल के दो प्रकार होते हैं जो इस प्रकार हैं :—

(क) हार्मोनिक-माइनर-स्केल (Harmonic-minor-scale) इस थाट (Scale)—का आरोह तथा अवरोह दोनों एक

ही प्रकार से होता है। इसके स्वर टोन तथा सेमीटोन के आधार पर इस प्रकार होते हैं :—

आरोह:—सा—रे—ग—म—प—ध—नि—सां।
T s T T s T+½ s

अवरोह:—सां—नि—ध—प—म—ग—रे—सा।
S T+½ s T T s T

इस प्रकार इस थाट में गन्धार व धैवत स्वर कोमल रहते हैं तथा बाकी स्वर शुद्ध होते हैं।

(ख) मेलॉडिक-माइनर-स्केल (Melodic minor-Scale):—इस थाट (scale) का आरोह तथा अवरोह समान नहीं होता अर्थात् आरोह में स्वरों का क्रम दूसरा रहता है तथा अवरोह में स्वरों का क्रम दूसरा रहता है। इसके स्वर, टोन तथा सेमीटोन के आधार पर इस प्रकार हो सकते हैं :—

आरोह:— सा—रे—ग—म—प—ध—नि—सां।
T s T T T T s

अवरोह:— सां—नि—ध—प—म—ग—रे—सा।
T T s T T s T

इस प्रकार ऊपर लिखे थाट के आरोह में गन्धार स्वर कोमल हुआ तथा अवरोह में निषाद, धैवत और गधार स्वर कोमल हुये हैं और बाकी स्वर शुद्ध हैं।

स्वर-समुदाय (chord) :—दो या दो से अधिक स्वरों को एक साथ उत्पन्न करने से कोर्ड (chord) की उत्पत्ति होती है। इन्हीं कोर्डों (chord) को सजाने से हामनी (Harmony) उत्पन्न होती है। कहने का अर्थ यह है कि जब कोर्ड को विभिन्न स्वरों की सहायता से सजाया जाता है तब हामनी की उत्पत्ति होती

है। इन स्वर-समुदायों अथवा कोर्ड (chord) को पार्श्व संगीत (Background music) के आधार पर बजाया जाता है। इन स्वर-समुदायों से गायन अथवा वादन में विभिन्न रसों की उत्पत्ति होती है।

पाश्चात्य संगीत में तीन स्वर-समुदाय (chord) प्रसिद्ध हैं :—

(१) पहला कोड (chord) सप्तक के ७ शुद्ध स्वरों में से पहला, तीसरा व पाँचवां स्वर लेकर बनता है। कहने का अर्थ यह हुआ कि सा, ग और प स्वरों को एक साथ उत्पन्न करने पर यह कोड बनता है, जिसे टॉनिक कोर्ड (Tonic Chord) कह कर पुकारते हैं। इस कोर्ड के तीन स्वरों के समुदाय को ट्रायड (Triad) कहते हैं। इसमें षड्ज मूल स्वर होता है। इन तीन स्वरों में तार 'सा' लगा कर—सा, ग, प, सां उत्पन्न करने पर इस कोड (chord) से वीर, उत्साह, दृढ़ता आदि भावों की उत्पत्ति होती है।

(२) दूसरा कोड ७ स्वरों में से 'प' (G) स्वर को मूल स्वर मानकर तथा उसका तीसरा व पाँचवा स्वर लेकर बनता है। कहने का अर्थ यह हुआ कि प, नि, और रें यह तीन स्वर एक साथ उत्पन्न किये जाते हैं। यह कोर्ड डोमीनेन्ट ट्रायड (Dominant Triad) कहलाता है। इन स्वरों की उत्पत्ति से व्याकुलता, दुःख आदि भावों की अनुभूति होती है।

(३) तीसरा कोर्ड (Chord) ७ स्वरों में से 'म' (F) को मूल स्वर मानकर तथा उसका तीसरा व पाँचवां स्वर लेकर बनाता है। कहने का तात्पर्य यह हुआ कि म, ध और सां, इन तीन स्वरों को एक साथ उत्पन्न करने पर इस कोड (Chord) की उत्पत्ति होती है। इस में क्योंकि म (F) स्वर मूलरूप में होता है, इसलिये इस कोड को भी डोमीनेन्ट ट्रायड (Dominant

Triad) कहकर पुकारते हैं। इन तीन स्वरों की उत्पत्ति से शान्त, करुण आदि रसों का आभास होता है।

पाश्चात्य स्वरलिपि-पद्धति (staff Notation)

पाश्चात्य सप्त-स्वरों के नाम इस प्रकार हैं :—

सा	रे	ग	म	प	ध	नि।
C	D	E	F	G	A	B।

यह सात शुद्ध स्वर इन नामों से लिखे जाते हैं परन्तु गाने में इन सात शुद्ध स्वरों को कहने के लिये इस प्रकार उच्चारण करते हैं :—

लिखने के लिये— C D E F G A B
गाने के लिये— Do Re Mi Fa Sol La Si

पाश्चात्य शुद्ध स्वरों का कोई चिन्ह नहीं है। परन्तु यदि कोई विकृत स्वर बराबर लाया जाता है तथा बाद में उसे शुद्ध करना होता है तो उस पर शुद्ध (natural) स्वर का चिन्ह लगा देते हैं। विकृत स्वरों के लिये पाश्चात्य संगीत में नीचे लिखे चिन्ह लगाते हैं :—

(१) कोमल-स्वर (Flat-note) का चिन्ह ♭

(२) तीव्र-स्वर (sharp-note) का चिन्ह ♯

(३) शुद्ध-स्वर (natural note) का चिन्ह ♮

पाश्चात्य संगीत में सप्तक के १२ स्वरों में आपस का अन्तर एक सेमीटोन का होता है। इसलिये साधारणतः किसी भी स्वर को कोमल व तीव्र बनाया जा सकता है क्योंकि पंचम पर कोमल का चिन्ह लगाने पर वह तीव्र मध्यम हो सकता है और शुद्ध 'नि' पर तीव्र का चिन्ह लगाने से तार 'सा' हो सकता है। परन्तु इस प्रकार करने का प्रचार बहुत कम है।

पाश्चात्य संगीत पद्धति में ताल की मात्राओं के चिन्ह इस प्रकार हैं :—

Breve	𝅜	= २ मात्रा
Semi breve	𝅝	= १ ,,
Minim	𝅗𝅥	= ½ ,,
Crochet	♩	= ¼ ,,
Quaver	♪	= ⅛ ,,
Semi-Quaver	𝅘𝅥𝅯	= 1/16 ,,
Demi-Semi-Quaver	𝅘𝅥𝅰	= 1/32 ,,
Hemi-Demi Semi-Quaver	𝅘𝅥𝅱	= 1/64 ,,

Digitized from www.dharmabrary.org

इन्हीं चिन्हों को यदि हम हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में अंकित करना चाहें तो इस प्रकार करना उचित होगा :—

एक मात्रा में दो स्वर लिखने के लिये (Quaver) स्वरों को मिला कर इस प्रकार लिखते हैं—

इसी प्रकार यदि एक मात्रा में चार स्वर (Quaver) लिखना चाहें तो इस प्रकार लिखेंगे :—

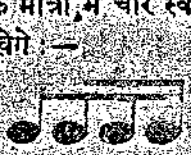

स्वरों को लिपि में लिखने के लिये पांच लाइने खींचते हैं। इन पाँच लाइनों के नीचे 'सा' होता है। सा और पाँचवीं लाइन के बीच में रे होता है और इसी प्रकार क्रम से लाइन और लाइन के बीच में स्वर होते हैं। इन स्वरों को उनकी मात्राओं के साथ लिखा जाता है जैसे कि ऊपर मात्राओं के चिन्ह दिये गये हैं :—

सा रे ग म प ध नि सां

यदि इन स्वरों में कोई स्वर विकृत होता है तो उस स्वर के आगे कोमल या तीव्र का चिन्ह लगा देते हैं। यदि 'रे' स्वर के खाने के आरंभ में कोमल स्वर का चिन्ह (b) लगा दें तो जितने भी रे प्रयोग होंगे सब कोमल रहेंगे। परन्तु बाद में यदि हमें 'रे' शुद्ध लिखना है तो 'रे' के आगे शुद्ध स्वर का चिन्ह लगाना पड़ेगा। इन स्वरों को उनकी मात्राओं के चिन्हों के अनुसार रक्खा जाता है जिससे प्रत्येक स्वर की मात्राओं का भी आभास हो जाता है।

पाश्चात्य संगीत पद्धति में मध्य व मन्द्र दो सप्तकों के स्वर विभिन्न चिन्हों से पहिचाने जाते हैं :—

Treble clef :—मध्य सप्तक के स्वरों को दिखाने के लिये पाँच लाइनें खींची जाती हैं तथा प्रारम्भ में मध्य सप्तक (Treble clef) का चिन्ह बनाया जाता है। पाँच लाइनों के

नीचे छठी लाइन पर मध्य सप्तक का 'सा' (middle c) होता है। चित्र द्वारा यह स्पष्ट हो जावेगा :—

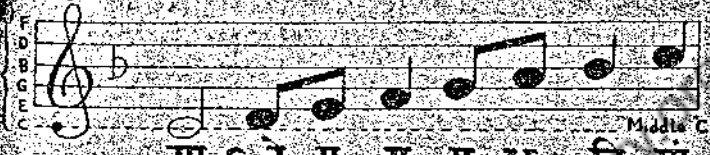

सा ऽ रे ग म प ध नि सां

ऊपर लगाया गया चिन्ह क्योंकि G (प) वाली लाइन पर आरम्भ होता है, तथा G स्वर के आस पास इसका घेरा रहता है, 'G' clef भी कहलाता है। ऊपर स्वरों को उनकी मात्राओं के साथ दिया गया है तथा निषाद को कोमल कर दिया गया है। इसी प्रकार कोमल अथवा तीव्र स्वरों के चिन्ह प्रयोग में लाये जाते हैं।

Bass clef:—पाश्चात्य संगीत में दूसरा सप्तक मन्द्र सप्तक (Bass clef) कहलाता है। मध्य सप्तक की तरह इस सप्तक के स्वरों को लिखने के लिये (middle c) की लाइन के नीचे पाँच लाइन खींचते हैं और एक के बाद एक स्वर करके (अवरोहि करके) अर्थात B, A, G F, E, D C नि ध प म ग रे सा) लाइनों पर और लाइनों के बीच में क्रमशः रखते हैं। सबसे प्रथम (Bass clef) का चिन्ह लगाते हैं। जैसे :—

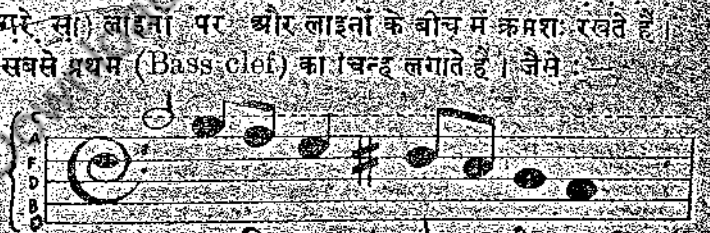

सा ऽ नि ध प म ग रे सा

Bass clef का यह चिन्ह क्योंकि F (म) स्वर के चारों ओर रहता है तथा F की लाइन से आरम्भ होता है, इससे इसे

'F' clef भी कहते हैं। ऊपर मन्द्र सप्तक के स्वर उनकी मात्राओं सहित दिये गये हैं। मध्यम के आगे तीव्र स्वर का चिन्ह लगा कर उसे तीव्र (Sharp) कर दिया गया है।

इस प्रकार हमने यह देखा कि पाश्चात्य स्वरलिपि किस प्रकार लिखी जाती है। गीत के शब्द लाइनों के नीचे लिखे रहते हैं। जिस स्थान पर ऊपर हमने सरलता के लिये स्वरों को लिख दिया है उन्ही स्थान पर गीतों के शब्द लिखे जाते हैं।

———

Digitized from www.jdsrajlibrary.in

शुद्धिपत्र

ष्ट	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
११	२१	बडज	षडज
१५	१३	तेरहवीं	चौदहवीं
२१	१८	ध नि	ध नि
२८	१२	नि ध प य	नि ध प,
२८	२२	आलायों	आलापों
३०	१७	मंग	मंग
३०	२०	पग रे गरे ग पध	पग रेग रेग पध
३१	१	निधु	निध
३१	२	गम	गम
३१	६	पप, निनि, पप,	पप निनि, पप,
३१	१६	मी	की
४४	६	रुपक	रूपक
४५	१६	न्यासु पंचम	न्यास सुपंचम
४६	२	नींह	नहीं
५५	७	त्रितात्ल	त्रिताल
६५	२१	गन्धार	ऋषभ
१०७	२	मूल्य ५	मूल्म ७
१२०	६	डिगे	डिग्गे
१३४	१०	लत	लय
१६७	११	(Conerence)	(Conference)
१६८	१६	द्वगीत	संगीत
१६०	हमीर की जाति	में प आरोह	आरोह में प वर्ज
२१७	१६	साँ	सा ।
२२३	१७	मग	मग